H
891.443
C 392 B

# बड़ी दीदी

# बड़ी दीदी

शरत्चन्द्र Chattopadhyaya

अनुवादक : रमेश दीक्षित

Sanmarg Prakashan

सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली-110007

Library IIAS, Shimla
H 891.443 C 392 B
00077895

H
891.443
C 392 B

77895
12/3/92

प्रकाशक :
सन्मार्ग प्रकाशन
16 यू० बी०, बैंग्लो रोड, जवाहरनगर
दिल्ली-110007

संस्करण : 1990 मूल्य : 20.00 रुपये मात्र

मुद्रक :
एस० एन० प्रिंटर्स
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

# एक

इस धरती पर फूस की आग जैसे कुछ विशेष प्रकार के व्यक्ति भी निवास करते हैं। उनका स्वभाव सहसा ही जल उठने और फिर सहसा ही बुझ जाने वाला है। ऐसे व्यक्तियों की पृष्ठभूमि पर हमेशा एक ऐसे व्यक्ति के रहने की आवश्यकता है कि जो उनके लिए फूस जैसा कुछ जुटाता रहे।

गृहस्थ-बालाएं मिट्टी का दीया जलाने के लिए जब उसमें तेल तथा बत्ती डालती हैं, उस समय साथ ही एक तिनका भी इस प्रयोजन से रख देती हैं कि जब दीपक की ज्योति कम पड़ने लगे, तो उस तिनके से बत्ती को हिला-डुला ऊपर किया जा सके। उसके अभाव में तेल तथा बत्ती की मौजूदगी में भी दीपक जलता नहीं रह सकता।

स्वभाव की दृष्टि से सुरेन्द्रनाथ भी काफी-कुछ इसी प्रकार का है। बल, बुद्धि, आत्मविश्वास आदि सभी गुणों के विद्यमान होने पर भी एकाकी कुछ कर सकने में वह असमर्थ है। जिस प्रकार कुछ थोड़ा कार्य वह जितने अधिक उत्साह से पूर्ण करता है, उसी प्रकार से उतने ही आलस्य से वह बाकी का कार्य छोड़ मौन बैठा भी रह सकता है। तब पड़ती है एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता, जो उसे यथोचित उकसाहट प्रदान करने की क्षमता रखता हो।

सुरेन्द्रनाथ के पिताजी पश्चिम में कहीं दूर वकालत कर रहे हैं। उनका सम्बन्ध बंगाल के साथ कुछ ज्यादा नहीं। वहीं रहकर सुरेन्द्र ने भी बीस वर्ष की आयु में एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की। इस सफलता में जहां उसके निजी गुणों का हाथ था, वहां विमाता के गुण भी सहायक हुए। विमाता इस प्रकार सतत उसके पीछे पड़ी रहती कि कभी-कभी तो उसे अपने अस्तित्व

पर भी विश्वास न रहता। लगता उसे कि सुरेन्द्र नाम के किसी व्यक्ति का कोई भी अस्तित्व नहीं है। जो कुछ भी वह करता है, उसके पीछे विमाता की इच्छा-धारणा ही है। खाना, सोना, जागना, पढ़ना-लिखना और यहां तक कि पास तक करना-कराना विमाता की इच्छा-आकांक्षा पर ही अवलम्बित है। निजी सन्तानों के प्रति उदासीन रहते हुए भी विमाता सुरेन्द्र का असीम ध्यान रखती है। सुरेन्द्र का खंखारना, थूकना तथा उसकी दृष्टियों से परे नहीं रह पाता। इस प्रकार की कर्तव्यपरायण महिला के अनुशासन में रहकर सुरेन्द्र ने पढ़ना-लिखना तो अवश्य सीख लिया, किन्तु आत्म-निर्भरता में वह नितान्त कोरा ही रह गया। अपने पर ही उसे विश्वास न था। उसे उस बात पर यकीन ही नहीं कि अपने तौर पर भी वह कोई कार्य पूर्णतया सहज-सौन्दर्य के साथ सम्पादित कर सकता है। अपनी साधारण-सी आवश्यकताओं पर भी वह एक अन्य व्यक्ति पर अवलम्बित है। कई बार तो यह निर्णय करते समय भी वह दुविधा में फंस जाता है कि इस समय मुझे नींद आ रही है, या फिर भूख लग रही है। होश संभालने के दिन से आज तक पन्द्रह वर्ष उसने पूर्णतया विमाता के सहारे ही व्यतीत किये हैं। सो सौतेली मां को ही उसके लिए अनेक कार्य करने पड़ते हैं।

विमाता के लिए चौबीस घण्टों में बाईस घण्टे तो अनादर, मुंह बनाना-बिगाड़ना, उपालम्भ देना आदि में व्यतीत करने ही पड़ते थे, इसके अतिरिक्त परीक्षा से वर्ष-भर पूर्व ही सुरेन्द्र को सारी रात जगाये रखने के लिए उसे अपने निद्रा-सुख को भी तिलांजलि देनी पड़ती। अपनी सौत की सन्तान के लिए इतना कब कौन करता है भला ? तभी तो मुहल्ला-निवासी मुक्त कंठ से राय-गृहिणी की प्रशंसा करते हुए तृप्त ही नहीं होते !

सुरेन्द्र के लिए किये गये समस्त प्रयत्नों में विमाता कभी नाम को भी कमी न आने देती। यदि अनादर तथा लांछना के प्रतिकारस्वरूप सुरेन्द्र का चेहरा कभी तमतमा उठता, तो राय-गृहिणी उसे अस्वस्थता का आरम्भिक लक्षण मानकर झट से तीन रोज के लिए साबूदाना खाते रहने का प्रबन्ध लागू कर देती। मानसिक सुशिक्षा एवं उन्नति की ओर भी

उनकी कड़ी निगरानी थी। यदि सुरेन्द्र कभी साफ-सुथरे आधुनिक वस्त्रों से सुसज्जित दिखायी देता, तो विमाता को यह भांपते तनिक भी देरी न लगती कि वह शौकीनी के साथ बाबू बनकर रहना चाहता है। सो तत्काल दो-तीन सप्ताह के लिए उसके कपड़े धोबी के यहां जाने से रोक दिये जाते।

कुछ इसी प्रकार से व्यतीत हो रहे थे सुरेन्द्र के दिवस। इस अत्यधिक ममतामय जीवन में पनपता हुआ वह कभी-कभी तो अपने जीवन को जीवित रखने के ही अयोग्य समझने लगता। और कभी-कभी सोचता कि हो सकता है सभी व्यक्तियों के जीवन का आरम्भ यों ही व्यतीत होता होगा। किन्तु आस-पास के लोग बीच-बीच में अवश्य ही उसके मन-मस्तिष्क में कुछ विपरीत-सी धारणाएं भरने के प्रयत्न करते रहते।

ऐसा ही घटा एक दिन। सुरेन्द्र के एक मित्र ने उसे सलाह दी कि यदि तुम्हारे जैसा विद्वान व्यक्ति इंगलैंड जा सके तो वह भविष्य में बहुत प्रगति कर सकता है। विदेश से लौटकर तुम देशवासियों का बहुत ही उपकार कर सकते हो। बात सुरेन्द्र को जंच गयी। जंगल-निवासी पक्षी की बनिस्वत पिंजरे का पक्षी तो यों भी अधिक पर फड़फड़ाता है, सो सुरेन्द्र की आंखें भी स्वतन्त्र वातावरण तथा उन्मुक्त प्रकाश की कल्पना से सराबोर हो उठीं। अतः उसके पराधीन प्राण भी जैसे अपने पिंजरे के गिर्द स्वतन्त्रता के लिए पर फड़फड़ाते हुए मंडराने लगे।

वह पिता के पास पहुंचा। उसने अनुनय की कि चाहे जैसे भी हो, उसको विलायत भेजने का बन्दोबस्त किया जाये। उसने पिता से ऐसा करने पर सब प्रकार की उन्नति की आशा दिखायी। पिता ने विचार करने का आश्वासन दिया, किन्तु गृहस्वामिनी का विचार इसके सर्वथा विपरीत था। आंधी के समान वह सहसा पिता-पुत्र के मध्य आ टपकी। वह इस प्रकार से अट्टहास कर उठी कि वे दोनों तो जैसे स्तब्ध-से रह गये।

गृहिणी बोली—तब मुझे भी इंगलैंड पढ़ा दो। अन्यथा वहां इसकी संभाल कौन करेगा? जो इतना तक नहीं जानता कि कब क्या खाना-पहनना चाहिए, उसे एकाकी विलायत भेजना चाहते हो? जैसे घर के घोड़े को विलायत भेजना है, वैसे ही इसे भेजना! घोड़े तथा बैलों को इतना

तो पता होता ही है कि हमें भूख लगी है अथवा नींद आ रही है, किन्तु तुम्हारे सुरेन्द्र को तो इतना भी पता नहीं चलता।

और फिर वह अट्टहास कर उठी।

हंसी की अधिकता ने राय महोदय को तो जैसे लज्जित कर दिया। सुरेन्द्रनाथ समझ गया कि इस अकाट्य युक्ति के विरुद्ध प्रतिवाद व्यर्थ है। अतः विलायत जाने की आशा उसे त्याग देनी पड़ी। परामर्श देने वाला मित्र यह समाचार पाकर अत्यधिक दुखी हुआ। किन्तु वह विलायत जा सकने का अन्य कोई उपाय भी न सुझा सका। अन्त में वह यह कहने लगा—इस प्रकार की गुलामी से तो भीख मांगकर पेट भर लेना कहीं उपयुक्त है। यह भी निश्चित है कि जिस व्यक्ति ने इतने सम्मान से एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की है, उसे पेट पालने के लिए कभी चिन्तित नहीं रहना पड़ता।

घर पहुंच सुरेन्द्र भी निरन्तर यही विचारने लगा। जितना अधिक वह सोचता, उतना ही उसे मित्र का कथन ठीक जान पड़ता। भीख मांग पेट भरना ही उपयुक्त है। यह तो ठीक है कि सभी विलायत नहीं जा सकते, तो भी यों जीवित-मृत अवस्था में रहकर भी सभी को जीवन नहीं काटना पड़ता है।

और तब एक रात्रि की संगीनता में कलकत्ता का टिकट कटा वह स्टेशन पर गाड़ी में सवार हो गया। साथ ही एक पत्र भी उसने डाक द्वारा पिता के पास भेज दिया कि कुछ दिनों के लिए मैं घर छोड़कर जा रहा हूं। व्यर्थ खोज-खबर करने से कुछ काम न होगा। फिर यदि मेरा पता आप लोगों ने पा भी लिया तो मेरे वापिस लौट आने की सम्भावना न करना।

राय महोदय ने वह पत्र घरवाली को दिखाया। वह बोली—सुरेन्द्र अब बड़ा हो गया है। पढ़-लिख गया है। पंख निकल आये हैं उसके। यदि अब भी वह न उड़ेगा तो फिर कब ?

इतने पर भी उन्होंने उसे खोजने का प्रयास किया। कलकत्ता के अपने परिचितों को पत्रों द्वारा सूचित कर दिया। किन्तु काम कुछ भी न हुआ और कहीं भी सुरेन्द्र का पता न चल सका।

# दो

अत्यन्त भीड़-भाड़ वाले कलकत्ता के कोलाहलमय वातावरण में पहुंचकर सुरेन्द्र सहसा घबरा उठा। न तो वहां कोई डांट-फटकार बताने वाला ही था और न अनुशासन में रखने वाला ही कोई था। न तो मुंह सूखने पर कोई देखने वाला है और न मुंह बोझल हो जाने पर ही किसी को चिन्ता होती है। यहां अपनी देखभाल स्वयं ही करनी पड़ती है। यहां भीख भी मिल सकती है, दया के लिए भी अवसर है, सहारा भी मिलता है, किन्तु सभी कुछ अपने प्रयत्नों से ही। स्वेच्छया कोई भी तुम्हारे काम में दखल देने न आयेगा।

सबस पहली शिक्षा जो यहां पहुंचने के बाद उसे मिली, वह यह कि कहीं जाने का प्रयत्न यहां स्वयं करना पड़ता है। रहने के लिए स्थान भी स्वयं ही खोजना पड़ता है और भूख तथा नींद में भी एक स्पष्ट भेद है।

कई दिन बीत गये उसे घर छोड़े हुए। गली-गली में मारे फिरते रहने से वह अत्यधिक शिथिल-सा होने लगा। पास जो रुपये थे, वे भी समाप्त होने लगे। कपड़े गन्दे होकर फटने लगे। कहीं रात को सो सकने तक के लिए स्थान न था।

नयना भर आये सुरेन्द्र के। लज्जा के कारण घर पत्र लिखने को भी मन न होता। जब उसे अपनी सौतेली मां का स्नेह से कठोर मुखड़ा याद हो आता, तब तो घर लौट जाने की इच्छा एकदम हवा हो जाती। वह यह सोचने में भी डर का आभास पाता कि मैं कभी वहां था।

अपने ही समान दरिद्र-से एक व्यक्ति को अपने समीप निहार एक दिन उसने पूछा—क्यों दादा! यहां तुम लोग खाते-पीते कैसे हो?

वह व्यक्ति भी एक प्रकार से मूर्ख-सा ही था, अन्यथा अवश्य ही वह सुरेन्द्र का मजाक उड़ाता। वह बोला—नौकरी द्वारा कमाते हैं—खाते हैं। काम की क्या कमी है कलकत्ता में!

सुरेन्द्र ने प्रश्न किया—मुझे भी कोई काम दिलवा सकते हो?

उसने पूछा—कौन-सा काम जानते हो तुम?

क्योंकि सुरेन्द्र तो कोई भी काम न जानता था, सो मौन होकर सोचने

लगा।

तुम तो भद्र परिवार के लड़के हो ?

सुरेन्द्र ने सिर हिला दिया।

फिर पढ़ना-लिखना क्यों न सीखा ?

सीखा है।

कुछ सोचते हुए वह व्यक्ति बोला—तब इस सामने वाले बड़े घर में चले जाओ। यहां एक बहुत बड़े जमींदार निवास करते हैं। वे कुछ-न-कुछ प्रबन्ध तो कर ही देंगे।

इतना कहकर वह चल दिया।

सुरेन्द्रनाथ द्वार पर पहुंचा। कुछ क्षण खड़ा रहा, मौन ! फिर तनिक पीछे हट आया। फिर एक बार तनिक आगे बढ़ा और फिर पीछे हट आया। सो वह दिवस यों ही बीत गया। दूसरा दिन भी यों ही कट गया। साहस बटोरकर आखिर दो दिन बाद उसने अन्दर प्रवेश किया। एक नौकर सामने ही खड़ा था। उसने प्रश्न किया—

क्या चाहिए ?

बाबू साहब से···!

बाबू साहब तो घर में नहीं है।

सुरेन्द्र का चेहरा आनन्द से भर उठा। जैसे अत्यधिक कठिन काम से वह छुटकारा पा गया हो। बाबू साहब घर पर नहीं, नौकरी की बात, अपनी कष्ट-गाथा सुनानी न पड़ी, यह सब उसकी प्रसन्नता के कारण थे। दुगुने उत्साह से लौट आज उसने होटल पर खाना खाया। कुछ देर इधर-उधर घूमते हुए वह मन-ही-मन विवेचना करता रहा कि कल कौन-से ढंग से बातचीत करने पर उसका कोई काम बन जायेगा ?

किन्तु दूसरा दिन आते-आते सारा उत्साह ढीला पड़ गया। जैसे-जैसे वह उस घर के समीप पहुंचता जाता था, वैसे-वैसे लौट पड़ने की इच्छा और भी प्रबल होती जाती थी। फाटक तक पहुंचते-पहुंचते तो वह एकदम ही निराश-सा हो गया। उसके डग किसी भी प्रकार भीतर की ओर न उठना चाहते थे। वह आज तक किसी भी प्रकार यह न सोच पा रहा था कि मैं अपने लाभ के लिए आप ही यहां आया हूं। लगता था, जैसे किसी अन्य ने

उसे वहां बलात भेज दिया है। किन्तु फाटक पर खड़ा रह वह व्यर्थ ही आशा-निराशा में न जूझता रहना चाहता था, सो भीतर प्रविष्ट हो गया। आज फिर वही कल वाला नौकर मिला। वह बोला—

आज बाबू साहब मकान पर ही हैं। मिलियेगा उनसे?

हां।

ठीक। तो चलिये!

किन्तु अत्यधिक कठिन समस्या आ खड़ी हुई। बहुत ही बड़ा मकान है जमींदार साहब का। अत्यधिक सुव्यवस्थित तथा नये ढंग से सजावट हो रही है। एक के बाद एक कमरा, संगमरमर की सीढ़ियां, प्रत्येक कमरे में झाड़-फानूस पर सुशोभित लाल उछाड़! दीवारों पर जड़े बड़े-बड़े दर्पण, जाने कितने चित्र और फोटोग्राफ! लोगों के लिए इस सबका चाहे कुछ भी महत्व क्यों न हो, सुरेन्द्रनाथ के लिए यह सब नितांत नवीन न था। क्योंकि उसका पैतृक घर किसी दरिद्र की कुटिया न था, चाहे कुछ भी हो, वह इतना बड़ा दरिद्र बाप की छत्रछाया में नहीं हुआ है।

सुरेन्द्र उस व्यक्ति के बारे में सोच रहा था, जिसके साथ बातचीत, अनुनय-विनय कर वह कार्य पाने के लिए जा रहा है। सोच रहा था वह, वे कैसे प्रश्न करेंगे और मुझे किस प्रकार उत्तर देना होगा?

किन्तु यह सब सोचने का समय ही कहां मिला! गृह-स्वामी सामने ही विराजमान थे। उन्होंने सुरेन्द्रनाथ से पूछा—

क्या कार्य है?

पिछले तीन दिनों से वह इसी प्रश्न का उत्तर सोच रहा था। किन्तु अब समय आ पड़ने पर जैसे वह सब-कुछ भूल गया। कहने लगा—मैं··· मैं···!

ब्रजराज लाहिड़ी पूर्वी बंगाल के जमींदारों में से हैं। उनके सिर के जो दो-चार बाल पके हैं, वे अ-काल नहीं, बल्कि समयानुसार ही पके हैं। बड़े लोग हैं, झटपट सुरेन्द्र का मन्तव्य समझकर उन्होंने फिर प्रश्न किया—

क्या इच्छा है?

जी, मुझे कोई···एक···।

क्या ?

नौकरी···!

कुछ मुस्कराते हुए व्रजराज बाबू बोले—तुम्हें यह किसने बताया कि मैं नौकरी दे सकता हूं ?

एक व्यक्ति राह में मिला। उससे जब मैंने पूछा, तो उसी ने मुझे आपके सम्बन्ध में···।

ठीक है। कहां के रहने वाले हो तुम ?

पश्चिम का।

कौन रहते हैं वहां तुम्हारे ?

सुरेन्द्रनाथ ने सभी कुछ बता दिया।

तुम्हारे पिताजी क्या काम करते हैं ?

परिस्थिति-दोष से सुरेन्द्र ने नयी बातों का अनुभव कर लिया था, सो कहने लगा—साधारण नौकरी करते हैं।

सो क्योंकि उतने से ही घर का काम नहीं चल पाता, इसलिए तुम भी नौकरी करके कमाना चाहते हो ?

जी हां।

यहां ठिकाना कहां है ?

किसी भी निश्चित स्थान पर नहीं। इधर-उधर ही···।

दया आ गई व्रज बाबू के मन में। सुरेन्द्र को बैठाते हुए कहने लगे—अभी तक निरे बच्चे हो तुम ! यह जानकर मुझे अत्यधिक दुख हुआ कि तुम्हें इस आयु में घर छोड़ने के लिए बाध्य होना पड़ा। मैं स्वयं तो यद्यपि तुम्हारे लिए किसी नौकरी की व्यवस्था नहीं कर सकता, किन्तु फिर भी ऐसा उपाय कर सकता हूं, जिससे तुम्हारी कुछ व्यवस्था बन सके।

व्रज बाबू ने जब देखा कि सुरेन्द्र मात्र 'ठीक है' कहकर जाने लगा है, सो उसे फिर पुकारते हुए बोले—कुछ और नहीं पूछना तुम्हें ?

जी नहीं।

बस ! बन गया काम इतने मात्र से ही ? यह जानने की आवश्यकता ही नहीं समझी तुमने कि मैं तुम्हारे लिए क्या और कब कुछ व्यवस्था कर सकता हूं ?

हतप्रभ-सा हो सुरेन्द्र मुड़कर खड़ा हो गया। हंसते हुए ब्रज बाबू ने पूछा—कहां जाओगे इस समय ?

किसी होटल पर।

वहां खाना खाओगे ?

हां। प्रतिदिन यही होता है।

तुम पढ़े-लिखे कहां तक हो ?

यों ही, बहुत कम सीखा है।

मेरे लड़के को पढ़ा सकोगे ?

प्रसन्न भाव से सुरेन्द्र बोला—हां ! पढ़ा सकूंगा।

पुनः ब्रज बाबू को हंसी आ गयी। उन्होंने अनुमान किया कि दुख-दारिद्र्य ने इसके मस्तिष्क को विकृत कर रखा है। क्योंकि किसे क्या पढ़ाना होगा, ये बिना जाने-समझे प्रसन्नता प्रगट करना मात्र उन्माद नहीं तो क्या है ? वे बोले—

यदि वह कहे कि मैं बी० ए० का विद्यार्थी हूं, तब तुम कैसे पढ़ाओगे ?

किंचित गम्भीर होते हुए सोचकर सुरेन्द्र बोला—मैं एक प्रकार से कार्य चला ही लूंगा।

यह सुनने के बाद ब्रज बाबू ने फिर कुछ भी न कहा और नौकर को बुलाकर आदेश दिया—वंकू, इनके रहने-खाने का सब प्रबन्ध कर दो। वे सुरेन्द्र की ओर मुड़कर फिर कहने लगे—मैं तुम्हें सन्ध्या के बाद पुनः बुलाऊंगा। जब तक तुम्हारी किसी नौकरी का बन्दोबस्त न हो जाये, तुम मेरे मकान पर ही रहो। यहां तुम मजे से रह सकते हो।

जब वे दोपहर का खाना खाने गये, तो अपनी बड़ी बेटी माधवी को बुलाकर कहने लगे—बेटी, एक निर्धन व्यक्ति को घर में रहने के लिए आज स्थान दिया है।

बाबूजी, वह कौन है ?

वह एक निर्धन व्यक्ति है, बस इससे अधिक मैं कुछ नहीं जानता। शायद कुछ लिखना-पढ़ना भी जानता है। जैसे ही मैंने तुम्हारे बड़े भाई को पढ़ाने का प्रस्ताव रखा, तो उसने झटपट स्वीकार कर लिया। जिसमें

बी० ए० तक को पढ़ा सकने का साहस है, वह तुम्हारी छोटी दीदी को तो पढ़ा ही सकेगा। मेरा विचार है कि प्रमिला का मास्टर उसे ही बना दूं।

माधवी ने कुछ भी आपत्ति न की।

सांझ ढले व्रज बाबू ने उसे बुलाया और उपरोक्त व्यवस्था समझा दी। अगले दिन से ही सुरेन्द्रनाथ प्रमिला को पढ़ाने लग पड़े।

प्रमिला मात्र सात साल की है। वह बोधोदय पढ़ती है। उसने बड़ी दीदी माधवी से इंगलिश की पहली पुस्तक भी मेंढक की कहानी तक पढ़ी थी। सो वह अपनी पुस्तक, कापी, स्लेट आदि लाकर पढ़ने के लिए डट गयी।

do not move ! सुरेन्द्रनाथ ने कहा—इसका अर्थ है, हिलो मत।

प्रमिला पढ़ने लगी—do not move—माने हिलो मत।

तत्पश्चात अनमना-सा सुरेन्द्रनाथ स्लेट लेकर उस पर कुछ अंक आदि लिखने लग पड़ा। एक के बाद एक प्रश्न हल होने लगा। 'ऊपर घड़ी पर सात, फिर आठ और उसके बाद नौ बजने लगे। प्रमिला बार-बार करवटें बदलती कभी तो पुस्तक के चित्रों वाले पृष्ठ उलटने लगती और कभी लेट जाती और फिर उठ बैठती। कभी वह मुंह में लांजेस रखकर चूसने लगती। पुस्तक में बने मेंढक के चित्र पर स्याही पोत पढ़ने लगती—do not move—माने हिलो मत।

मास्टरजी, मैं भीतर जाऊं ?

जाओ।

सुबह का समय उसका इसी प्रकार बीत जाता। किन्तु दोपहर को उसे कुछ अन्य ही करना पड़ता। व्रज बाबू ने विशेष दया से कुछ भद्र व्यक्तियों के नाम सुरेन्द्र को नौकरी देने के लिए पत्र लिख दिये थे। उन पत्रों को जेब में डालकर वह निकल पड़ता। ढूंढ़ते-खोजते उन पत्रों वाले व्यक्तियों के घरों पर पहुंच जाता और वहां यह देखने में निमग्न रहता कि मकान कितना बड़ा है, उसमें कितनी खिड़कियां और दरवाजे हैं। कितने कमरे बाहर की ओर हैं, मकान की एक ही मंजिल है कि दो-तीन, कोई बिजली का स्तम्भ भी सामने है या नहीं—आदि। और फिर सांझ ढलने

से पूर्व ही वह घर लौट आता।

यों तो वह घर से भी कुछ पुस्तकें अपने साथ लेता आया था, किन्तु कलकत्ता पहुचकर भी सुरेन्द्रनाथ ने कुछ पुस्तकें और खरीदी थीं। सो वह गैस-रोशनी में उन पुस्तकों को पढ़ता रहता। यदि काम-धन्धा मिलने की बात ब्रज बाबू कभी पूछते भी तो वह या तो मौन हो रहता अथवा उन भद्र पुरुषों के न मिलने का बहाना गांठ देता।

## तीन

ब्रज बाबू को पत्नी-विरह हुए लगभग चार वर्ष हो चुके हैं। बुढ़ापे के इस कष्ट का अनुमान वृद्ध ही लगा सकते हैं। खैर, छोड़ो यह चर्चा ! क्योंकि उनकी लाड़ली बेटी माधवी मात्र सोलह वर्ष की ही आयु में अपने पति से हाथ धो बैठी है। इस दुर्घटना ने तो ब्रज बाबू का आधा रक्त-शोषण कर लिया है। अत्यधिक धूम-धाम तथा शौक से उन्होंने माधवी को ब्याहा था। धनी होने के कारण उन्होंने इसकी चिन्ता न की। वर के धनी होने की खोज-बीन भी उन्होंने न की। यदि कुछ देखा तो मात्र यही कि वर पढ़-लिख रहा है, सुन्दर है, सुशील और सच्चरित्र है। बस, माधवी का ब्याह उन्होंने इन्हीं बातों के आधार पर किया था।

मात्र ग्यारह साल की आयु में ही माधवी की शादी कर दी गयी थी। तीन साल तक वह पति-गृह में रही। सयत्न प्रेम उसने प्राप्त किया। किन्तु योगेन्द्रनाथ न रहे। माधवी के जीवन की समस्त इच्छा-आकांक्षाओं पर पानी फेर और ब्रजराज बाबू के सीने में बर्छी घोंप वे स्वर्गवासी हो गये। मृत्यु-समय निकट निहार जब माधवी ने अत्यधिक बिलखना शुरू कर दिया था, तो अत्यन्त कोमल-कंठ से उन्होंने कहा था—माधवी, सबसे बढ़कर दुख मुझे इसी बात का है कि मैं तुम्हें छोड़े जा रहा हूं, मुझे अपनी मृत्यु का कष्ट नहीं। कष्ट तो इस बात का हो रहा है कि तुम्हें आजीवन

दुख भोगना पड़ेगा। मैं तुम्हारा यथेष्ठ सम्मान भी न कर सका···!

तदनन्तर तो योगेन्द्रनाथ के विशाल लक्ष्यों पर लगातार बहती रही अश्रुधारा ! उनके आंसू पोंछकर माधवी ने कहा था—मैं जब दुबारा तुम्हारे चरणों में आश्रय लूंगी, तब आदर-मान करना···।

कहा था योगेन्द्रनाथ ने—माधवी ! जिस जीवन को तुमने मेरे सुखों के लिए अर्पित करना था, उसे अब सबके लिए अर्पित कर देना। जिस किसी का भी मुख उदासीन एवं दुखी नज़र आये, उसी को प्रसन्न करने का प्रयत्न करना। बस ! क्या कहूं अधिक ?

उसके बाद पुनः उद्वेलित अन्तर आंसुओं के मिस बरसने लगा। किन्तु माधवी ने आंसू पोंछ दिये।

सच्चाई की राह पर चलना तुम ! तुम्हारे पुण्य-प्रताप से मैं पुनः तुम्हें प्राप्त कर सकूंगा।

उस दिन से माधवी में आमूल परिवर्तन आ गया है। क्रोध, हिंसा, द्वेष आदि के समस्त भाव उसने पति की चिता की राख के साथ-साथ गंगा की अजस्र-धारा में प्रवाहित कर दिये हैं। जीवन की इच्छाएं-आकांक्षाएं अनन्त होती हैं। वैधव्य का अभिशाप मिलने पर भी वे कहीं जाती नहीं, अपितु बनी ही रहती हैं। माधवी अपने पति के सम्बन्ध में सोचने लगती है, जब वे ही नहीं रहे, तो फिर ये सब क्यों ? किसकी खातिर मैं दूसरों से ईर्ष्या कर उनके नयनों को बहने दूं ? फिर ये समस्त हीनता-ग्रंथियां उसमें थीं ही कब ? वह बड़े बाप की बेटी है। हिंसा अथवा द्वेष आदि की उसे शिक्षा ही कहां मिली थी ?

उसके उद्यान में अनेक पुष्प खिलते हैं। पहले तो वह उन पुष्पों का हार पिरो अपने स्वामी के कंठ में डाला करती थी। पर अब, जब कि वे नहीं रहे तो भी वे पुष्पों के झाड़ उसने कटवा नहीं डाले। उन पर अब भी पहले के समान ही पुष्प मुस्कराते हैं, किन्तु अब वे पुष्प झरकर व्यर्थ मुरझा जाते हैं यद्यपि अब वह उन पुष्पों का हार नहीं पिरोती, तो भी उन्हें हथेलियों में बटोर दीन-दुखियों में वितरित कर देती है। जिनके पास इनका अभाव है, उन्हें भावपूरित करती है। यह सब करते हुए उसमें तनिक भी कंजूसी नहीं आती। तनिक भी माथे पर बल नहीं पड़ता।

जिस रोज ब्रज बाबू की पत्नी ने स्वर्गारोहण किया, उसी रोज से यह घर विश्रृंखलित-सा हो गया है। सभी को मात्र अपनी चिन्ता है। किसी को किसी का ध्यान नहीं। किसी के पास दूसरे को देखने का अवसर नहीं। सभी के लिए अपने-अपने नौकर थे कि जो केवल अपने ही मालिक का कार्य देखते। भोजनालय में रसोइया खाना बना देता है और सभी अपनी-अपनी थाली यज्ञ-भोग के सामने बिछाकर खा लेते हैं। किसी को खाना मिला या नहीं, यह सब देखने का कष्ट कोई भी न करता।

किन्तु जिस रोज भादों की उच्छल गंगा के समान माधवी अपने पितृ-गृह में वापस आ गयी, उस रोज से इस गृहस्थी में मानो एक नये माधव का आगमन हुआ है। अब सभी के मुंह पर रहता है—बड़ी दीदी! माधवी!!

घर का पालतू कुत्ता भी मानो अब सांझ ढले एक बार अवश्य ही बड़ी दीदी को देखने का इच्छुक रहता है। जैसे इतने भरे-पूरे घर में उसने भी किसी स्नेहमयी का निर्वाचन कर लिया है। बड़े मालिक से लेकर नौकर, गुमाश्ते तक सभी लोग अब बड़ी दीदी के बारे में ही सोचते हैं और सभी उसी पर अवलम्बित हैं। कुछ भी कारण क्यों न हो, सभी अपने-अपने मन में बड़ी दीदी पर अपना विशेष अधिकार समझने का दावा करते हैं।

स्वर्गीय कल्प-वृक्ष हमने न तो कभी देखा ही है और न कभी देख पाने की सम्भावना ही है। सो उसकी चर्चा व्यर्थ है। तो भी ब्रजराज बाबू के समस्त परिवार ने अवश्य पा लिया है एक कल्प-वृक्ष! सभी उसी कल्प-वृक्ष की छाया में जा इच्छा से हाथ फैलाते हैं, और प्रसन्न भाव से इच्छा पूर्ण कर लौटते हैं।

सुरेन्द्रनाथ ने अब पारिवारिक जीवन में रह सकने का एक नया ढंग देखा। देखा, कि जब सभी ने अपना समस्त बोझ एक ही व्यक्ति पर डाल रखा है तो वह ही क्यों पीछे रहे? सो वह भी अन्य लोगों के समान ही करने लगा। किन्तु उसकी धारणा अन्य लोगों से कुछ अलग किस्म की थी। उसकी धारणा थी कि बड़ी दीदी नामक एक जीवन्त वस्तु घर में वर्तमान है, जो कि सभी की देख-भाल करती, नाज-नखरे उठाती और आवश्यकता

पड़ने पर सब-कुछ देती है। कलकत्ता के राजपथों पर घूमते समय उसने अपनी चिन्ता आप करने की आवश्यकता का कुछ अनुभव किया था, किन्तु इस घर में प्रवेश करने के बाद उसे कतई स्मरण न रहा कि कभी ऐसा दिन भी आया था कि उसे अतीत में अपनी चिन्ता आप ही करने की आवश्यकता लगी थी। या फिर भविष्य में कभी फिर भी वह स्थिति लौट आ सकती है।

धोती, कुर्ता, जूता, घड़ी, छाता, आवश्यकता पड़ने पर सभी कुछ उसके लिए उपस्थित है। रूमाल तक भी जैसे कोई उसके लिए सहेजकर रख जाता। पहले तो कौतूहलवश वह पूछता, यह सब कहां से आया ? उत्तर मिलता, बड़ी दीदी ने भेजा है। पर आजकल तो वह नाश्ते की प्लेट तक से अनुमान लगा लेता कि यह सब बड़ी दीदी का सयत्न आयास है।

एक रोज जब वह गणित करने बैठा, तो कम्पास का ध्यान हो आया। वह प्रमिला से बोला—प्रमिला, बड़ी दीदी से कम्पास ले आओ।

क्योंकि बड़ी बहन को कम्पास की आवश्यकता कभी नहीं पड़ती, सो वह उसके पास मौजूद भी न था, किन्तु शीघ्र ही उसने एक व्यक्ति बाजार से लाने के लिए भेज दिया। जब सांझ को सुरेन्द्रनाथ भ्रमण के बाद घर आया तो देखा उसने कि मेज पर इच्छित पदार्थ पड़ा है। अगले रोज सुबह प्रमिला ने बताया—मास्टर साहब, बड़ी दीदी ने यह भिजवा दिया है।

उसके बाद तो वह बीच-बीच में निरन्तर ही ऐसी वस्तुओं की फरमाइश करने लगा, जिस कारण माधवी के सामने झंझट खड़ा हो जाता। बहुत खोज के बाद वह मांग पूरी हो पाती। किन्तु तो भी वह वस्तु के जुटा सकने से कभी इन्कार न करती।

कभी-कभी तो वह सहसा प्रमिला से कह उठता—बड़ी दीदी से पांचेक पुरानी धोतियां मांग लाओ। भिखारियों को देनी हैं।

नयी-पुरानी धोतियां छाटने का अवसर तो हमेशा माधवी को मिलता न, सो वह अपनी पहनने वाली धोतियां ही भेज देती और फिर ऊपरी खिड़की से निहारती कि चार-पांच निर्धन कोलाहल करते हुए चले जा रहे हैं। क्योंकि उन्हें कपड़े जो मिले हैं!

इस प्रकार के आवेदन-अत्याचार सुरेन्द्रनाथ की ओर से अक्सर माधवी को सहन करने पड़ते। किन्तु धीरे-धीरे माधवी इतनी अभ्यस्त हो गयी कि अब उसे इस बात का ध्यान ही न रह गया कि कोई नवीन व्यक्ति आकर दैनिक कार्य-व्यापारों में किसी प्रकार का उत्पात खड़ा करता रहता है। मात्र इतना ही नहीं, आजकल माधवी को इस नवागन्तुक के लिए अत्यधिक सावधान रहना पड़ता है। बहुत ध्यान रखना पड़ता है। अगर वह व्यक्ति अपनी आवश्यकता की वस्तुएं स्वयं ही मांग लिया करता तो माधवी का परिश्रम आधा रह जाता। चिन्ता का प्रश्न तो यह है कि अपने लिए वह कभी कुछ मांगता ही नहीं। माधवी को पहले तो यह समझ में न आया कि सुरेन्द्रनाथ तनिक अन्यमनस्क प्रकृति का है। सुबह की चाय ठंडी हो जाने पर भी उसे पीने का भी ध्यान नहीं आता। नाश्ते तक का ध्यान उसे नहीं रहता। कभी-कभी तो वह कुत्ते को नाश्ता खिलाकर ही चल देता है। जब खाने के लिए बैठता, तो उसका कुछ सम्मान नहीं। खाद्य-पदार्थ इधर-उधर छिपा देता ! जैसे उसे कुछ अच्छा ही नहीं लगता। नौकर-चाकर आकर कहा करते—मास्टर साहब तो विक्षिप्त व्यक्ति हैं। देखना-सुनना कुछ नहीं, बस पुस्तक लेकर ही बैठे रहते हैं हमेशा।

जब कभी बीच में ब्रज बाबू नौकरी आदि के सम्बन्ध में प्रश्न करते तो सुरेन्द्रनाथ बस इधर-उधर करके ही कुछ उत्तर दे देता। अपने पिता के मुंह से सब सुन माधवी इसी परिणाम पर पहुंचती कि नौकरी के लिए मास्टर साहब तनिक भी परिश्रम नहीं करते। उनकी रुचि भी नहीं है नौकरी में। जो सहसा मिल गया है, उतने में ही प्रसन्न हैं।

सुबह दस बजते न बजते बड़ी दीदी के यहां से नहाने-खाने के लिए ताकीद होने लगती। यदि ठीक प्रकार से खाना न खाते तो प्रमिला बड़ी दीदी की ओर से शिकायत भी कर देती। यदि अधिक रात तक पुस्तक लिये बैठे रहते, तो नौकर मना करने पर भी गैस की चाबी घुमा जाता और कह देता—दीदी की ऐसी ही आज्ञा है।

एक रोज हंसते हुए माधवी ने अपने पिता से कहा—बाबूजी, प्रमिला के मास्टर साहब भी ठीक उसी जैसे ही हैं।

कैसे बेटी ?

दोनों में बचपना है। जैसे प्रमिला को इस बात की समझ नहीं कि उसे कब क्या चाहिए, कब खाना, सोना चाहिए, उसी प्रकार उसके मास्टर साहब की भी दशा है। अपना तो कुछ ठिकाना नहीं; उस पर भी बीच-बीच में ऐसी मांग कर बैठते हैं कि हवास दुरुस्त रहने पर वैसी मांग कोई भी नहीं कर सकता।

कुछ भी न समझ ब्रज बाबू उसका मुंह निहारते रह गये।

हंसकर माधवी ने कहा—तुम्हारी बेटी को पता है कि उसे कब क्या चाहिए?

नहीं जानती?

वह अकसर असमय ही उत्पात भी करने लगती है।

हां! वह तो करती ही है।

मास्टर साहब की भी यही हालत है।

हंसते हुए ब्रज बाबू कहने लगे—लगता है, कुछ उन्मादी है।

उन्मादी नहीं, बल्कि ऐसा लगता है कि बड़े घर का बेटा है।

हैरान हो ब्रज बाबू ने पूछा—कैसे समझा?

न जानते हुए भी माधवी ऐसा ही समझती थी।

सुरेन्द्र स्वयं तो अपना एक काम भी न कर पाता था। वह तो सर्वथा दूसरों पर ही आश्रित रहता। यदि कोई उसका कार्य कर देता तो हो जाता, अन्यथा वैसे ही पड़ा रहता। इसी असमर्थता के कारण वह माधवी द्वारा पकड़ा गया था। माधवी का विचार है कि यह सब उसकी पुरानी आदत है। खास कर उसके खाने के ढंग ने तो माधवी को अत्यधिक चकित कर दिया है। किसी भी खाने की ओर उसका मन आकर्षित नहीं होता और न ही वह सन्तुष्टि से कुछ खाता ही है। जैसे किसी पदार्थ पर उसकी रुचि ही नहीं। उसमें वर्तमान बूढ़ों की-सी उदासीनता, बच्चों जैसी सरलता, उन्मादियों की-सी उपेक्षा-वृत्ति. यदि कोई दे दे तो खा लेता, अन्यथा नहीं। ये समस्त व्यापार माधवी को अत्यधिक रहस्यमय लगे। इसी कारण इन मास्टर साहब के लिए अज्ञात रूप से उसका मन करुण हो उठा था।

वह लज्जावश किसी ओर नहीं निहारता, यह बात भी नहीं। बल्कि

उसे देखने की जरूरत ही नहीं पड़ती। किन्तु आवश्यकता पड़ने पर वह समय-कुसमय तक का ध्यान नहीं रखता। सहसा बड़ी दीदी के पास उसकी अभ्यर्थना आ पहुंचती है।

मुस्कराते हुए माधवी सोचती रहती है—वास्तव में यह व्यक्ति एकदम बच्चों-सा सरल स्वभाव है।

## चार

माधवी की एक सखी है मनोरमा। क्योंकि माधवी ने अनेक दिनों से उसे कोई पत्र न लिखा था, सो वह अत्यधिक रुष्ट थी। दुपहर ढले कुछ समय पाकर माधवी उसे पत्र लिखने बैठी ही थी कि प्रमिला ने आ पुकारा—

बड़ी दीदी!

सिर उठाते हुए माधवी बोली—क्या है री?

मास्टर साहब का चश्मा खो गया है। वे एक चश्मा मांगते हैं।

हंसते हुए माधवी ने उत्तर दिया—अपने मास्टर साहब से जाकर कह दो, मैंने यहां चश्मों की दुकान खोल रखी है क्या?

भागकर प्रमिला जाना ही चाहती थी कि माधवी ने पुकारा—

अरी, जा कहां रही हो?

उन्हें कहने के लिए।

इससे तो अच्छा है कि जाकर गुमाश्ताजी को ही बुला दे।

प्रमिला गुमाश्ताजी को बुलाकर ले आयी। उनके आ जाने पर माधवी ने कहा—मास्टर साहब का चश्मा कहीं खो गया है। इसलिए उन्हें एक बढ़िया चश्मा दिलवा दिया जाये।

जब गुमाश्ताजी चले गये तो पुनः माधवी मनोरमा को पत्र लिखने में तल्लीन हो गयी। पत्र के अन्त में उसने लिखा—

बाबूजी ने प्रमिला के लिए एक अध्यापक नियत किया है। उसे एक

77895

बड़ा आदमी भी कहा जा सकता है और साथ ही एक नन्हा बच्चा भी। लगता है, जैसे इससे पूर्व वह कभी घर से बाहर नहीं निकला। उसे दुनिया के सम्बन्ध में तनिक भी ज्ञात नहीं। यदि उसका पूरी तरह से ध्यान रख देख-भाल न की जाये तो एक क्षण के लिए भी उसका काम चल सकना कठिन है। आधा समय तो उसी के सुपुर्द हो गया है। फिर तुम्हें पत्र किस समय लिखूं ? यदि तुम्हारा शीघ्र ही इस ओर आना हुआ तो यह निकम्मा व्यक्ति तुम्हें भी दिखाऊंगी। तुमने कभी भी ऐसा निठल्ला तथा उन्मत्त मनुष्य न देखा होगा ! यदि खाने के लिए दे दिया तो खा लिया, वरना उपवास ही चल रहा है। शायद ही कभी इस बात का ध्यान आता हो सारे दिन में कि उसने खाना भी खाया है या नहीं। वह तो मात्र एक दिवस के लिए भी आत्म-निर्भर नहीं रह सकता। यही सोचती हूं कि ऐसे व्यक्तियों को घर से बाहर निकलना ही नींह चाहिए। यह भी सुनने में आया है कि उसके मां-बाप जीवित हैं। लगता है कि वे पत्थर-दिल है। यदि मैं होती तो शायद एक क्षण के लिए भी ऐसे पुरुष को आंखों से ओझल न कर पाती।

उत्तर में मनोरमा ने परिहास करते हुए लिखा—अन्य समाचारों के साथ तुम्हारे पत्र से यह आभास भी मिला कि तुमने अपने घर में एक बंदर पाल रखा है। तुम उसके लिए सीता देवी बन रही हो। किन्तु तो भी सावधान करना ठीक समझती हूं। इति—मनोरमा।

माधवी का चेहरा पत्र पढ़ने के साथ-साथ अनजाने ही आरक्त हो उठा। उत्तर में उसने लिखा—तुम तो मुंहझोंसी हो ! अतः तुम्हें इतना भी पता नहीं कि कहां कैसा परिहास उचित होता है।

माधवी ने प्रमिला से प्रश्न किया—तुम्हारे मास्टरजी का चश्मा किस प्रकार का आया ?

प्रमिला ने उत्तर दिया—ठीक ही आया।

पता कैसे लगा ?

क्योंकि वह चश्मा पहन मास्टर साहब आनन्द से पढ़ते हैं, उसी से पता चल गया।

माधवी बोली—स्वयं कुछ नहीं कहा उन्होंने ?

नहीं, कुछ भी नहीं।

कतई नहीं कि अच्छा है अथवा खराब ?

एकदम नहीं।

सदा विकसित रहने वाले माधवी के मुखड़े पर क्षण भर के लिए मलिनता फैल गयी। किन्तु तत्काल संभलते हुए वह हंसकर बोली—

अपने मास्टर साहब को कह देना कि फिर कहीं चश्मा न गंवा दें।

ठीक। कह दूंगी।

हिश् पगली ! ऐसा भी कहा जाता है क्या ? वे क्या सोंचेंगे अपने मन में ?

तो न कहूं कुछ भी ?

नहीं।

एक दिन माधवी ने अपने भाई शिवचन्द्र से पूछा—जानते हो कि मास्टर साहब रात-दिन क्या पढ़ते रहते हैं ?

बी० ए० का विद्यार्थी होने के कारण वह नन्हीं प्रमिला के मास्टर को भला क्या समझता था ! वह लापरवाही से बोला—पढ़ते होंगे कोई नाटक-उपन्यास ! भला और क्या पढ़ने लगे वे ?

किन्तु माधवी विश्वास न कर पायी। प्रमिला को कहकर उसने मास्टरजी की एक पुस्तक चोरी से मंगवा ली और अपने भाई को दिखाती हुई कहने लगी—यह नाटक या उपन्यास तो नहीं लगता मुझे।

सारी पुस्तक उलट-पुलटकर देखने के बावजूद भी शिवचन्द्र कुछ न समझ पाया। वह मात्र यही समझ पाया कि यह गणित की पुस्तक है और मैं इसका एक भी अक्षर नहीं समझ सकता। किन्तु बहन के सामने सम्मान न जाये, इस कारण झूठ-मूठ बोला—

स्कूल की छोटी कक्षाओं में पढ़ाई जाने वाली साधारण-सी गणित की पुस्तक है और क्या ?

म्लान-मन माधवी ने कहा—तो क्या कॉलेज में पढ़ाई जाने वाली किसी उच्च कक्षा की पुस्तक नहीं है यह ?

नीरस भाव से शिवचन्द्र ने उत्तर दिया—एकदम नहीं।

किन्तु तब से जान-बूझकर भी शिवचन्द्र कभी सुरेन्द्रनाथ के सामने न

आता। मन-ही-मन उसे भय समा गया कि किसी दिन वह कुछ पूछ ही न बैठे और सब पोल-पट्टी खुल ही न जाये। परिणामस्वरूप पिता के आदेश से उसे भी प्रमिला के साथ-साथ मास्टर साहब के सामने कापी-पेंसिल संभाल बैठना न पड़ जाये।

कई दिनों बाद माधवी अपने पिता से बोली—मैं कुछ दिनों के लिए काशी जाना चाहती हूं, बाबूजी!

चिन्तित भाव से ब्रज बाबू ने कहा—क्यों बेटी? यदि तुम काशी चली जाओगी तो घर-गृहस्थी का कार्य कैसे चलेगा?

हंसकर माधवी बोली—मैं सदा के लिए तो नहीं जा रही। जल्दी ही वापिस आ जाऊंगी।

माधवी ने तो हंस दिया, किन्तु पिता के नयन सजल हो उठे। अतः माधवी ने भांप लिया कि उसने ऐसा कहकर ठीक नहीं किया। बात को संभालती हुई वह बोली—मात्र थोड़े दिन के लिए घूमने ही जाऊंगी।

बेशक जाओ! किन्तु घर न चल सकेगा, बेटी!

मेरे बिना घर न चल सकेगा?

चलेगा तो अवश्य, बेटी! किन्तु पतवार के टूट जाने पर जैसे नौका बहाव का ही रुख करती है, वैसी ही स्थिति हो जायेगी।

किन्तु उसके लिए काशी जाना अति आवश्यक था। क्योंकि वह वहां रहने वाली अपनी विधवा ननद को एक बार देखना चाहती है।

जिस दिन उसे काशी जाना था, प्रत्येक को बुलाकर उसने गृहस्थी-सम्बन्धी कार्य समझा दिये। बूढ़ी नौकरानी को बुलाकर पिता, भाई तथा प्रमिला की विशेष देख-रेख रखने की हिदायत की। किन्तु मास्टर साहब के सम्बन्ध में उसने किसी से कुछ भी न कहा। यह नहीं कि वह उसे भूल गयी थी, बल्कि जान-बूझकर ही उसने इस बात को भुला दिया। वह इस समय उस पर क्रुद्ध हो उठी। माधवी ने उसके लिए क्या कुछ न किया? किन्तु उसके मुख से कृतज्ञता का एक शब्द भी न निकला। अतः प्रवास-यात्रा कर माधवी उस निठल्ले एवं निकम्मे व्यक्ति पर यह प्रकट करना चाहती है कि मेरा भी कुछ महत्व है। तनिक से परिहास में दोष ही क्या है? यह जान लेने में हर्ज ही क्या है कि उसकी अनुपस्थिति में मास्टर के दिन

किस प्रकार व्यतीत होते हैं ? इसी कारण जाते समय वह सुरेन्द्रनाथ के सम्बन्ध में किसी को कोई हिदायत न दे गयी।

उस समय सुरेन्द्रनाथ गणित की कोई समस्या सुलझा रहा था कि प्रमिला ने सूचना दी—कल रात बड़ी दीदी तो काशी प्रस्थान कर गयीं।

किन्तु जैसे उसने सुना ही नहीं। कुछ भी ध्यान न दिया। किन्तु तीन दिन बाद जब उसे आभास हुआ कि अब दस बजे स्नान-भोजन के लिए किसी का तकाजा नहीं होता, कभी-कभी तो एक तथा दो भी बज जाते हैं। नहाने के बाद धोती बदलते समय वह अनुभव करता है कि वह साफ नहीं है। नाश्ते की प्लेट भी पहले के समय-सी सहेजी नहीं रखी, गैस बुझाने के लिए भी अब रात को कोई नहीं आता, पढ़ते हुए रात के दो और तीन भी बज जाते हैं। प्रातः नींद ही नहीं खुलती और उठने में काफी देरी हो जाती है, नींद तो जैसे छोड़ना ही नहीं चाहती, शरीर तो जैसे अत्यधिक क्षीण पड़ गया। तभी वह जान सका कि इस घर-गृहस्थी में अवश्य ही कहीं कुछ तबदीली आयी है। गर्मी लगने पर ही मानव पंखा खोजता है। पुस्तक से पलकें उठाते हुए सुरेन्द्रनाथ ने प्रमिला से पूछा—

क्यों प्रमिला, बड़ी दीदी यहां नही हैं क्या ?

वह बोली—वह तो काशी गयी हैं।

हां ! तभी तो !

दो दिन बाद अचानक ही उसने प्रमिला को निहार प्रश्न किया—कब तक आयेंगी बड़ी दीदी ?

एक मास बाद।

सुरेन्द्रनाथ पुनः पुस्तक पढ़ने लगा।

पांच दिन और सरक गये। पेंसिल को किताब के ऊपर रखते हुए सुरेन्द्रनाथ ने पूछा—प्रमिला, कितने दिवस शेष हैं एक महीने में ?

काफी दिन हैं अभी !

पेंसिल को उठाकर सुरेन्द्रनाथ ने चश्मा आंखों से उतार उसके दोनों शीशों को साफ किया और बिना चश्मा चढ़ाये ही आंखें पुस्तक पर गढ़ाये रहा।

अगले दिन उसने फिर प्रमिला से प्रश्न किया—तुम बड़ी दीदी को

पत्र नहीं लिखा करतीं, प्रमिला ?

क्यों नहीं लिखती !

शीघ्र ही चली आने के लिए नहीं लिखा ?

नहीं।

एक क्षीण उच्छ्वास छोड़ते हुए वह बोला—तभी तो !

प्रमिला बोली—मास्टर साहब, यदि बड़ी दीदी जल्दी लौट आयें तो ठीक हो न ?

हां, ठीक हो।

तो लिख दूं चली आने के लिए ?

प्रसन्नता प्रकट करते हुए सुरेन्द्रनाथ ने कहा—अवश्य लिख दो।

क्या आपके सम्बन्ध में भी सूचित कर दूं ?

कर दो।

'कर दो' कहने में उसने किसी भी प्रकार की दुविधा का अनुभव न किया। क्योंकि वह संसार के किसी भी नियम-विधान से परिचित नहीं। एक क्षण के लिए भी उसके मन-मस्तिष्क में यह विचार न आया कि बड़ी दीदी से चली आने का अनुरोध करना उसके लिए शोभनीय नहीं है, अथवा कर्ण कटु भी है। जिसकी अनुपस्थिति उसके लिए अनुपयुक्त है और जिसके अभाव में उसका कोई भी कार्य नहीं चल पा रहा, उसे आ जाने के लिए कहने में उसने तनिक की असंगति न पायी।

इस विश्व में कौतूहल के रहित मानव साधारण समाज से कुछ परे ही समझे जाते हैं। जन-साधारण के समाज से उनका स्वभाव मिलाप नहीं कर पाता। न ही जन-साधारण से उनका मन्तव्य ही मेल खा सकता है। सुरेन्द्र का स्वभाव कौतूहल की प्रवृत्ति से ऊपर था। वह अपने प्रयोजनीय से अधिक कुछ भी जानने का इच्छुक नहीं। इतनी इच्छा से वाहर एक डग भी भर सकना न तो उसका स्वभाव ही है और न उसके पास इतना समय ही है। यही कारण है कि बड़ी दीदी के बारे में भी वह एकदम अनभिज्ञ था। तीन महीने का लम्बा अवसर उसने अपना बोझ बड़ी दीदी पर डाल अन-जाने ही व्यतीत कर दिया। इतने अर्से में एक दिन भी यह जानने की उत्सु-कता उसके मन में न आयी कि आखिर वह प्राणी है कैसा ? क्या आयु है

उसकी, देखने-सुनने में कैसा लगता है, उसमें क्या-क्या गुण हैं, वह कुछ भी नहीं जानता। न तो यह सब जानने की इच्छा ही मन में आयी और न ख्याल ही आया। क्या उसके सम्बन्ध में भी कुछ जाना-सुना जा सकता है? सभी उसे बड़ी दीदी कहकर पुकारते हैं, इसलिए वह भी पुकारता है। अन्य सभी के समान वह भी इससे स्नेह प्राप्त करता है। उसके पास संहार की सभी वस्तुओं का अथाह आगार है। उसमें जहां अन्य सभी कुछ प्राप्त करते हैं, यदि सुरेन्द्र ने भी पा लिया तो कौन-सी नयी अथवा बड़ी बात हो गयी? जैसे बादल का कार्य जल-वर्षा है, उसी प्रकार बड़ी दीदी का कार्य सबसे स्नेह करना तथा सबकी आवश्यकता-पूर्ति है, जैसे वर्षाकाल में प्रत्येक हाथ बढ़ाने वाले को पानी प्राप्त हो जाता है, उसी प्रकार सभी को बड़ी दीदी की ओर हाथ फैलाने से इच्छित प्राप्त हो जाता है। वह भी जैसे बादल के समान अन्धी तथा कामना-विरहित है।—सुरेन्द्र ने यही सब सोचकर प्रथम दिन जो इस प्रकार की धारणा गढ़ी थी, वह आज भी ज्यों की त्यों है। हां, उसके काशी-प्रवास के बाद उसे इतना ज्ञान अवश्य और हो गया है कि बड़ी दीदी के बिना उसका एक क्षण भी कट सकना अत्यन्त दूभर है।

अपने घर पर रहते समय वह या तो अपने पिता से परिचित था, या फिर सौतेली मां से। उनके कर्तव्यों से भी वह परिचित था। आज तक किसी बड़ी दीदी का परिचय ही उसे प्राप्त न था और जब परिचय हुआ, तब से यही धारणा बना पाया है। किन्तु इस व्यक्ति को भी वह जानता-पहचानता कुछ नहीं। वह मात्र नाम से परिचित है और नाम ही उसके लिए सब-कुछ है।

जिस तरह आम लोग अपने इष्टदेव को देख तो नहीं पाते, मात्र उसके नाम से ही परिचित होते हैं, दुख की अवस्थाओं में उसके नाम के आगे ही हृदय खोल देते हैं, नतमस्तक हो उससे दया की याचना करने लगते हैं। लोगों के नयना अश्रु-सिक्त होने पर भी उन्हें पोंछ सूनी पलकों से किसी के दर्शन पाना चाहते हैं, किन्तु कुछ देख नहीं पाते, असमर्थ जीभ मात्र दो-एक अस्पष्ट शब्दों का उच्चारण करके ही स्तब्ध रह जाती है, उसी तरह ठीक

सुरेन्द्रनाथ ने भी उन दुखद क्षणों में अस्पष्ट रूप से उसे पुकारा—
बड़ी दीदी !

## पांच

अभी सूर्य नहीं निकलने पाया था। केवल पूर्वा का आंचल लाल मात्र ही हुआ था। सहसा प्रमिला ने आकर सोते हुए सुरेन्द्रनाथ के गलबहियां डालते हुए पुकारा—

मास्टर साहब !

अलस नयना उघाड़ते हुए सुरेन्द्रनाथ ने कहा—प्रमिला क्या है ?

बड़ी दीदी आ गयी हैं।

उठकर बैठ गया सुरेन्द्रनाथ। प्रमिला का हाथ थामते हुए कहने लगा —चलो, उन्हें देख आवें।

पता नहीं देखने की इच्छा उसके मन में क्योंकर जगी ? यह भी पता न चल सका कि आज पहली बार वह कैसे प्रमिला का हाथ थाम भीतर की ओर चल पड़ा ? किन्तु वह भीतर घुस सीढ़ियां चढ़ने लगा। माधवी के कमरे के सामने खड़े हो प्रमिला ने पुकारा—

बड़ी दीदी !

अनमनी-सी बड़ी दीदी कार्य-व्यस्त थी। वह बोली—क्या दीदी ?

मास्टर साहब···!

तब तक वे दोनों कमरे में प्रविष्ट हो चुके थे। हड़बड़ायी-सी माधवी ने खड़े होते हुए हाथ-भर लम्बा घूंघट खींच लिया और एक कोने में दुबक गयी।

सुरेन्द्रनाथ कहने लग गया था—बड़ी दीदी ! तुम्हारे लिए मैं अत्यधिक दुख···!

घूंघट की ओट में अत्यधिक सलज्ज भाव से अपनी जीभ काटती हुई

माधवी कह उठी—छिः ! छिः !!

तुम्हारे चले जाने के बाद···!

मन-ही-मन माधवी बोली—ओह ! क्या लज्जा की बात है ! फिर प्रकट में अत्यन्त कोमल भाव से बोली—प्रमिला, मास्टर साहब से बाहर चले जाने के लिए कह दो ।

छोटी होने पर भी प्रमिला को अपनी दीदी का यह व्यवहार नहीं भा रहा था । कहने लगी—मास्टर साहब, चलिये···!

कुछ क्षण अप्रतिभ-सा खड़ा रहने के बाद सुरेन्द्र कहने लगा—चलो !

न तो वह अधिक बातचीत करना ही चाहता था और न जानता ही था । किन्तु जैसे दिन-भर मेघावृत्त रहने के बाद सूर्य निकलते ही लोग सहसा उसकी ओर निहारने लगते हैं, उन्हें एक क्षण को भी यह खयाल नहीं आता कि सूर्य को निहारना नहीं चाहिए अथवा उधर निहारने से आंखें पीड़ित हो सकती हैं, बिलकुल वैसे ही मानो पूरा महीना बादलों से घिरे गगनतल के नीचे निवास के बाद प्रथम सूर्योदय के समय सुरेन्द्र प्रसन्न मन उसे देख सकने के लिए जा पहुंचा था । किन्तु उसने इस परिणाम की कल्पना तक भी न की थी ।

बस उसी दिन से उसके देख-भाल के सयत्न कार्यों में कमी आने लगी । क्योंकि मौसी बिन्दुमति ने उस बात को लेकर तनिक हंस दिया था, सो माधवी कुछ सकुचाने लगी थी । सुरेन्द्रनाथ भी तनिक लज्जित-सा हो गया था । वह आजकल अनुभव करने लगा था कि बड़ी दीदी का असीम आगार भी जैसे सीमित हो उठा है । जैसे अब दीदी के प्रयास तथा मातृ-स्पर्श उसे नहीं छू पाते । जैसे दूर-ही-दूर आकर कुछ भी परे सरक जाता है ।

एक रोज उसने प्रमिला से पूछा—क्या बड़ी दीदी मुझसे कुछ नाराज हैं, प्रमिला ?

हां ।

किस कारण ?

उस रोज आप उस प्रकार से घर के भीतर क्यों घुस गये थे ?

क्यों ? वहां नहीं जाना चाहिए था क्या ?

इस प्रकार भी कहीं जाया जाता है क्या ? बड़ी दीदी मुझ पर बहुत

ही बिगड़ने लगी थीं।

पुस्तक बन्द करते हुए सुरेन्द्रनाथ मात्र यही बोला—ऐसा ही तो···।

एक रोज दोपहर के समय खूब बादल छा गये और अत्यधिक वर्षा हुई। ब्रजराज बाबू विगत दो दिनों से घर से अनुपस्थित हैं। वे जमींदारी देखने गये हैं। माधवी का हाथ भी खाली था। प्रमिला भी काफी उत्पात मचा रही थी। माधवी बोली—

प्रमिला ! ला तो अपनी पुस्तक ! तनिक देखूं कि कहां तक पढ़ा है ?

प्रमिला तो जैसे काठ बन गयी।

माधवी ने पुनः कहा—ला पुस्तक !

रात में लाऊंगी।

नहीं, अभी ले आ।

अत्यधिक दुखी मन से वह पुस्तक लाने के लिए गयी। जब पुस्तक ले आयी तो कहने लगी—कुछ भी तो नहीं पढ़ाते मास्टर साहब। बस खुद ही पढ़ते रहते हैं।

माधवी ने उससे पूछना शुरू कर दिया। आदि से अन्त तक अनेक प्रश्न पूछने पर उसने यही अनुमान लगाया कि वास्तव में मास्टर साहब ने कुछ पढ़ाया तो है ही नहीं, बल्कि उसे जो कुछ आता था, विगत तीन-चार महीनों में वह भी सब भूल गयी है। क्रुद्ध होकर माधवी ने बिन्दु को बुलाकर आदेश दिया कि वह जाकर मास्टर साहब से पूछे, उन्होंने इतने दिनों से प्रमिला को कुछ पढ़ाया क्यों नहीं।

जब आदेश पालन करने के लिए बिन्दु मास्टर साहब के पास पहुंची, तब वे गणित की कोई समस्या सुलझाने में अत्यधिक व्यस्त थे। बिन्दु ने प्रश्न किया—बड़ी दीदी ने पूछा है मास्टर साहब, कि इतने दिनों से आपने प्रमिला को कुछ पढ़ाया क्यों नहीं ?

मास्टर साहब ने तो जैसे कुछ सुना ही नहीं।

बिन्दु ने पुनः जोर से पुकारकर कहा—मास्टर साहब !

क्या है ?

बड़ी दीदी पूछती हैं···।

क्या पूछती हैं ?

यही कि प्रमिला को पढ़ाया क्यों नहीं इतने रोज ?

अनमने भाव से सुरेन्द्र ने उत्तर दिया—पढ़ाना रुचता नहीं ।

जैसा उसने कहा था, उसे ठीक ही विचार बिन्दु ने उसी प्रकार जाकर माधवी को वता दिया । वह और भी क्रोध में भर उठी । नीचे आकर स्वयं द्वार की ओट में खड़े होकर माधवी ने विन्दु के माध्यम से प्रश्न किया—प्रमिला को एकदम पढ़ाया नहीं गया—क्यों ?

दो-तीन बार जब क्रमशः प्रश्न किया गया तो सुरेन्द्रनाथ ने उत्तर दिया—

मुझसे न पढ़ाया जा सकेगा ।

माधवी विचार में पड़ गयी कि आखिर यह वता क्या है ?

पूछा बिन्दु ने—तव आपका रहने से प्रयोजन ही क्या है ?

यदि रहूं न तो फिर जाऊं किधर ?

तव पढ़ाते क्यों नहीं ?

सहसा जैसे होश में आते हुए सुरेन्द्रनाथ ने घूमकर वैठते हुए कहा—कहती क्या हो ?

विन्दु ने अपना कथन दुहरा दिया । तव सुरेन्द्रनाथ कहने लगा—प्रतिदिन तो पढ़ती ही है वह ।

वह तो पढ़ती ही है, किन्तु क्या आप भी देखते हैं कुछ ?

नहीं । समय ही नहीं मिलता मुझे तो ।

तव इस घर में रहते ही किस कारण हो ?

मौन हो सुरेन्द्रनाथ इस प्रश्न पर विचार करने लगा ।

तव क्या न पढ़ा सकेंगे आप उसे ?

नहीं । पढ़ाना अच्छा ही नहीं लगता मुझे ।

किवाड़ की आड़ से माधवी ने विन्दु से पूछने के लिए कहा—विन्दु पूछो इनसे, तब यहां इतने रोज से किसलिए डेरे डाले हैं ?

बिन्दु ने दुहरा दिया । यह प्रश्न सुनकर सुरेन्द्रनाथ की गणित की समस्याओं का सारा पाश जैसे एकदम पाश-पाश हो गया । कुछ सोचते हुए उसने पीड़ित स्वर में कहा --

मुझसे यही तो बहुत बड़ी गलती हुई है ।

निरन्तर चार मास तक इतनी बड़ी गलती ?

हां ! यह गलती ही तो दिखायी दे रही है। किन्तु मुझे इस गलती का इतना ध्यान न था।

अगले रोज प्रमिला पढ़ने के लिए न आयी। सुरेन्द्र ने भी इस ओर कोई विशेष ध्यान न दिया। तीसरे दिन भी वह न आयी और सारा दिन व्यर्थ में कट गया। किन्तु जब चौथे रोज भी प्रमिला न दिखायी दी, तब सुरेन्द्र ने एक नौकर से कहा—

तनिक प्रमिला को बुला देना।

भीतर से वापिस आकर नौकर ने कहा—अब वह आपसे न पढ़ेगी।

किससे पढ़ेगी तब ?

तनिक बुद्धि-व्यय करते हुए नौकर ने उत्तर दिया—कोई दूसरा मास्टर आ जायेगा पढ़ाने।

लगभग नौ बज रहे थे। कुछ क्षणों तक सोचने-समझने के बाद सुरेन्द्रनाथ ने तीन-चार पुस्तकें बगल में दबायीं और उठकर खड़ा हो गया। चश्मा केस में बन्द कर मेज पर रखते हुए वह गम्भीर डग भरता चल पड़ा धीरे-धीरे।

नौकर ने प्रश्न किया—मास्टर साहब; कहां चले अब ?

बड़ी दीदी को बता देना कि मैं जा रहा हूं।

अब लौटेंगे नहीं क्या ?

यह प्रश्न सुरेन्द्रनाथ ने सुना ही नहीं और मौन भाव से चलकर वह प्रमुख द्वार से बाहर हो गया।

दो बज गये किन्तु वह लौटा नहीं। तब कहीं नौकर ने माधवी के पास जाकर सूचना दी—मास्टर साहब तो चले गये।

गये कहां ?

पता नहीं यह तो। वे तो नौ बजे ही चले गये थे। जाते समय मुझसे मात्र यही कहा कि बड़ी दीदी से कह देना, मैं जा रहा हूं।

यह क्या ? खाये-पिये बगैर ही चल दिये ?

व्याकुल हो माधवी स्वयं सुरेन्द्रनाथ वाले कमरे में चली आयी। उसने देखा—सभी कुछ ज्यों-का-त्यों पड़ा है। चश्मा भी मेज पर रखा है।

हां, कुछ दो-चार पुस्तकें कम हैं।

सांझ ढली। रात आयी। सुरेन्द्रनाथ तब भी न आया। दूसरे दिन माधवी ने नौकरों को बुलाकर कहा—यदि तुम लोग मास्टर साहब को खोज लाओगे तो दस-दस रुपये पारितोषिक दूंगी।

पारितोषिक के लोभ से वे सभी खोजने के लिए इधर-उधर भाग खड़े हुए। किन्तु सांझ ढले सभी ने निराश लौटकर सूचना दी—कहीं भी नहीं मिल सके।

रुदित स्वर में प्रमिला ने पूछा—वे चले क्यों गये, बड़ी दीदी?

उसे हटाते हुए माधवी बोली—जा बाहर! रो नहीं।

दो रोज, तीन रोज—जैसे-जैसे दिन गुजरने लगे, वैसे-वैसे माधवी की व्याकुलता में भी वृद्धि होने लगी। बिन्दु ने कहा—

बड़ी दीदी, उसकी इतनी खोज-खबर से भला क्या प्रयोजन है? इतने बड़े कलकत्ता नगर में क्या अन्य कोई मास्टर नहीं?

क्रोधावेश में माधवी बोली—चल हट, दूर हो जा। एक व्यक्ति बिना पैसा-धेला लिये चला जाय और तू खोज का कारण पूछती है?

कैसे जाना कि उसके पास पैसा-धेला नहीं?

पता है मुझे! किन्तु तुम्हें क्या लेना-देना है इस कुरेद से?

मौन हो गयी बिन्दु। इसी प्रकार जब लगातार सात दिन तक वह लौटकर न आया, माधवी का तो अन्न-जल सभी कुछ छूट गया। लगता उसे, जैसे सुरेन्द्रनाथ क्षुधित है। जो घर में रहकर कुछ नहीं मांग सकता, वह अन्य किसी से क्या मांगकर खाता होगा? उसका दृढ़ निश्चय है कि न तो सुरेन्द्रनाथ के पास एक भी पैसा है और न उसमें भीख मांग सकने का बल ही है। अतः या तो वह किसी पटरी पर बैठा निस्सहाय नन्हें बच्चे के समान रो रहा होगा अथवा सिर के नीचे पुस्तकें रखे किसी वृक्ष की छाया में सो रहा होगा।

वापिस आने पर जब ब्रज बाबू ने सब सुना तो माधवी से कहने लगे—यह सब ठीक नहीं हुआ, बेटी!

अत्यधिक संवेदना से आहत माधवी के आंसुओं का बांध टूटकर बिखर गया।

उधर सुरेन्द्रनाथ सड़कें नापता रहता। तीन दिन तक तो उसने कुछ भी न खाया-पीया। क्योंकि नल का पानी विना पैसों के मिलता है, सो भूख लगने पर भरपेट पानी पी लेता।

एक रात कहीं से यह सुनकर कि काली घाट पर खाने को मिलता है, वह अत्यधिक निराश तथा जर्जर हो उधर जा रहा था। अन्धेरी रात, उस पर वादलों की गड़गड़ाहट! चौरंगी का मोड़ पार करते समय सुरेन्द्र एक घोड़ा-गाड़ी की लपेट में आ गया। क्योंकि कोचवान ने बड़ी सतर्कता से आगें खीच घोड़े का वेग रोक लिया था, इस कारण वह मरा तो नहीं, हां, उसके वक्षस्थल तथा वगल में काफी चोट आयी, और वह गिरकर मूर्च्छित हो गया। पुलिस ने गाड़ी में डालकर उसे अस्पताल पहुंचा दिया। लगातार चार-पांच दिन तक वह वेसुध-सा पड़ा रहा। उसके वाद जैसे ही उसकी सुध लौटी, उसने सवसे पहले पुकारा—वड़ी दीदी!

ड्यूटी पर तैनात मैडीकल कॉलेज का एक विद्यार्थी उसकी आवाज सुनकर समीप आ गया। उससे सुरेन्द्र ने प्रश्न किया:—

वड़ी दीदी आयीं?

कल सुवह आ पायेंगी।

अगली सुबह सुरेन्द्रनाथ के हवास तो दुरुस्त हो गये, किन्तु आज उसने वड़ी दीदी की चर्चा न की। सारा दिन वह अत्यधिक ज्वर में छटपटाता रहा। सांझ ढले उसने किसी से प्रश्न किया—

क्या मैं अस्पताल में हूं?

हां।

किसलिए?

आप गाड़ी की लपेट में आ गये थे।

वच जाने की आशा है क्या?

जरूर!

अगले रोज उस पहले वाले छात्र ने पास आकर सुरेन्द्रनाथ से प्रश्न किया—क्या आपका यहां कोई अपना है?

नहीं, कोई नहीं।

फिर उस रात बड़ी दीदी के नाम से किसे बुला रहे थे आप? वे यहीं

हैं क्या ?

हैं तो, किन्तु आ न पायेंगी वे। क्या आप मेरे पिताजी के पास समाचार भेज सकेंगे ?

अवश्य भेज सकूंगा।

तब सुरेन्द्र ने अपने पिता का पता-ठिकाना बता दिया। उस विद्यार्थी ने तत्काल उन्हें पत्र द्वारा सूचना भेज दी।

उसके बाद बड़ी दीदी के सम्बन्ध में जान सकने की इच्छा से छात्र ने कहा—यदि कोई महिला यहां आना चाहे तो आराम से आ सकती है। हम लोग वैसी व्यवस्था कर सकते हैं। यदि आप अपनी बड़ी दीदी का पता-ठिकाना बता दें, तो उन्हें भी सूचित किया जा सकता है।

कुछ क्षण सोचने के बाद सुरेन्द्र ने ब्रज बाबू का ठिकाना बता दिया।

मेरा घर ब्रज बाबू की बगल में ही है। मैं उन्हें सूचित कर दूंगा। यदि उनकी इच्छा होगी तो देखने के लिए आ जायेंगे।

सुरेन्द्र प्रत्युत्तर में मौन ही रहा। मन-ही-मन में उसने सोच लिया था कि बड़ी दीदी का आगमन सम्भव नहीं। उस छात्र ने करुणावश उसका समाचार ब्रज बाबू तक अवश्य ही पहुंचा दिया।

चौंकते हुए ब्रज बाबू ने प्रश्न किया—वह बच तो जायेगा न ?

हां। पूर्ण आशा है।

ब्रज बाबू ने भीतर जाकर माधवी को बताया—जो सोचा था, वही हुआ, माधवी ! सुरेन्द्र गाड़ी की लपेट में आ जाने के कारण अस्पताल में पड़ा है।

अंग-अंग कांप उठा माधवी का।

उसने 'बड़ी दीदी' कहकर तुम्हें पुकारा था। देखने के लिए चलोगी तुम ?

तभी सहसा पास वाले कमरे में पता नहीं प्रमिला ने क्या गिरा दिया जिसकी झंकार चारों ओर भर उठी। उधर ही भागी गयी माधवी। काफी समय के पश्चात वापस आकर उसने कहा—

मैं न जा पाऊंगी। तुम्हीं देख आओ।

कुंठित भाव से तनिक मुस्कराकर ब्रज बाबू ने कहा—वह तो जंगली

जानवर है रे ! उस पर क्रोध क्या उचित है ?

माधवी मौन रही। सो व्रज वावू अकेले ही उसे देखने के लिए चले गये। उसे देख अत्यधिक दुखित भाव से उन्होंने कहा—सुरेन्द्र ! यदि तुम्हारे मां-वाप को सूचित कर दिया जाये तो ?

कर दिया है सूचित।

चिन्ता की कोई बात नहीं। वे आ जायें, मैं सब प्रबन्ध कर दूंगा। और फिर रुपये-पैसे के बारे में सोचते हुए व्रज वावू बोले—तुम मुझको ही उन लोगों का ठिकाना बता दो। मैं ऐसा वन्दोबस्त कर दूंगा कि उन्हें यहां आने में तनिक भी कठिनाई न हो।

कुछ भी ठीक प्रकार से न समझते हुए सुरेन्द्र बोला—वावूजी आ ही जायेंगे। इसमें कठिनाई का क्या प्रश्न है ?

घर वापिस आ व्रज बाबू ने माधवी को सभी कुछ कह सुनाया।

उसके बाद व्रज वावू प्रतिदिन सुरेन्द्र की देख-भाल करने के लिए अस्पताल जाने लगे। अनजाने ही उसके प्रति उनका हृदय स्नेहिल हो उठा था। एक रोज वापिस आकर उन्होंने सहसा माधवी से कहा—

तुम्हारा अनुमान ठीक था कि सुरेन्द्र के वाप काफी अमीर हैं।

विशेष आग्रह के भाव से माधवी बोली—कैसे पता चला ?

उनके पिता तो एक नामी वकील हैं। कल रात ही वे आये हैं।

मौन रही माधवी। व्रज बावू ने ही कहा—यह सुरेन्द्र घर से भाग आया था।

क्यों ?

व्रज बाबू बोले—आज बातचीत हुई थी उसके पिता से। सब बताया उन्होंने। इसी साल ही उसने वहीं के एक विश्वविद्यालय से सम्मान सहित एम० ए० की परीक्षा पास की है। वह चाहता था कि विलायत जाये। क्योंकि वह अत्यधिक अनमने स्वभाव वाला व्यक्ति है, सो पिता ने वहां भेजने का साहस ही न किया। इसी कारण रुष्ट होकर यह घर से भाग आया है। ठीक हो जाने पर वे उसे अपने साथ घर ले जायेंगे।

उद्वेलित अन्तर में उमड़ आयी आह तथा आंसुओं का घूंट भर माधवी बोली—अच्छा भी यही होगा।

## छह

सुरेन्द्रनाथ को अपने घर गये छह मास हो गये हैं। इस अन्तर में माधवी ने अपनी सखी मनोरमा को मात्र एक ही पत्र लिखा था। जब दुर्गा-पूजा के अवसर पर मनोरमा पीहर आयी, तो हाथ धोकर माधवी के पीछे पड़ उसे अपना बन्दर दिखाने का आग्रह करने लगी।

हंसते हुए माधवी ने उत्तर दिया—मैं कहां पाऊंगी बन्दर भला ?

उसकी ठुड्डी पर हाथ रखते हुए अत्यधिक कोमल स्वरों में मनोरमा गुनगुनाने लगी—

तू अपना बन्दर दिखला दे, मन मेरा ललचाता है।

अरुणिम तब चरणों में वह शोभा कैसी पाता है।

किन्तु बन्दर कौन-सा ?

जो तूने पालतू बनाया था, वहीं।

कब ?

मुस्कराकर मनोरमा कहने लगी—स्मरण नहीं क्या कि जो तुम्हारे सिवाय अन्य किसी को भी नहीं पहचानता ?

माधवी ने पहले ही सब समझ लिया था, इस कारण उसका चेहरा भी कुछ विवर्ण-सा हो उठा था। फिर भी वह अत्यधिक संयम न करती हुई बोली—आह ! उनकी चर्चा है ! वे तो स्वयं ही चले गये।

ये रंचित चरण-कमल उसे नहीं भाये क्या ?

माधवी मुंह फिरा मौन रही। अपने हाथों से मनोरमा ने अत्यन्त स्नेह के साथ उसका मुखड़ा अपनी ओर किया। उसने अनुभव किया कि परिहास में ही माधवी के नयना सजल हो उठे हैं। विस्मित-सी मनोरमा ने कहा—यह क्या, माधवी ?

माधवी और अधिक संवरण नहीं कर पायी तथा आंचल में नयना ढांप सिसक पड़ी। मनोरमा असीम विस्मय में डूब गयी। वह क्या कहे, उसे कुछ भी सूझ न रहा था। जब वह कुछ क्षण रो चुकी तो मनोरमा ने बल-पूर्वक उसके मुंह से आंचल हटाते हुए अत्यधिक दुखित स्वरों में कहा—क्यों दीदी, साधारण परिहास भी सहन न हुआ ?

आंसू पोंछते हुए माधवी ने उत्तर दिया—विधवा जो हुई दीदी।

तत्पश्चात कई क्षण दोनों ओर से मौन व्यतीत हो गये और फिर जैसे दोनों ही ने रोना शुरू कर दिया। मनोरमा के रोने का कारण तो था माधवी का वैधव्य, किन्तु माधवी के रुदन का कारण कुछ अन्य ही था। माधवी का ध्यान मनोरमा के इसी कथन पर केन्द्रित था—कि वह तुम्हारे सिवाय किसी को पहचानता तक नहीं। उसे पता था कि बात एकदम सत्य है। काफी क्षणों के बाद मनोरमा बोली—

यह सब उचित नहीं हुआ, किन्तु···।

क्या सब ?

वह भी क्या कहना ही पड़ेगा, दीदी ? मैं सब समझ चुकी हूं।

विगत छह महीनों से वह जिन बातों को छिपाये रखने के लिए प्राण-पण से सचेष्ट थी, वे मनोरमा से छिपी न रह सकीं। पकड़ी जाने पर मुंह छिपाकर वह बच्चों के समान रोने लगी।

मनोरमा ने अन्त में प्रश्न किया—किन्तु चले किस कारण गये ?

मैंने ही कह दिया था जाने के लिए।

ठीक ही किया। बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य किया।

माधवी को लगा कि मनोरमा तनिक भी नहीं समझ पायी। सो उसने सभी बातें खोलकर कह दीं। अन्त में बोली—यदि वे सुरक्षित बच न पाते, तब मैं तो पागल ही हो जाती शायद !

मन-ही-मन मनोरमा ने सोचा—अब भी पागल होने में क्या शेष रह गया है ? अत्यधिक दुखी भाव से उस दिन मनोरमा अपने घर वापिस आ गयी। घर पहुंच वह अपने पति को पत्र लिखने बैठ गयी—

तुम्हारा विचार उचित ही है कि स्त्रियों का कुछ भी यकीन नहीं। क्योंकि माधवी ने मुझे सिखा दिया है, सो आज मेरा भी यही विचार है। क्योंकि मैं बचपन से ही उससे परिचित हूं, इस कारण उसे दोष देने को जी नहीं मानता। मैं तो समस्त नारी-जाति और फिर उसका निर्माण करने वाले विधाता के मत्थे सब दोष मढ़ रही हूं कि उसने पानी-से अस्थिर तत्वों से नारी-हृदय का निर्माण ही क्यों किया ? मैं विधाता के चरणों में निवेदन कर रही हूं कि वे अन्तराल का निर्माण तनिक कठोर तत्वों से किया करें।

तुम्हारे चरणारविन्द में भी निवेदन है कि इन्हीं प्राणों पर नत-मस्तक हो, तुम्हारा मुखड़ा निहारती हुई ही अपने प्राण त्याग सकूं। माधवी को निहार मैं अत्यधिक त्रस्त हो उठी हूं। उसने मेरे जीवन-भर की धारणाओं-मान्यताओं को वदल दिया है। सो मुझ पर भी अधिक विश्वस्त न रह शीघ्र ही ले जाओ आकर मुझे।

उसके पति ने उत्तर दिया—

जिसके पास सौन्दर्य होगा, प्रदर्शित करेगी ही। गुणवान अपने गुणों को भी आलोकित करेगी। जिसके अन्तराल में प्यार है और प्यार करने से भी परिचय है, वह प्यार भी करेगा ही। यदि माधवीलता आम्र-वृक्ष का आधार लेती है और फिर संसार का नियम भी यही है, तव उस स्थिति में हम-तुम कर ही क्या सकते हैं? मुझे तुम पर पूर्ण विश्वास है, अतः चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं।

अपने पति के पत्र को सिर-आंखों से लगा, उन्हें प्रणाम करते हुए मनोरमा ने उत्तर में लिखा—

मुंहझौंसी माधवी! विधवा के लिए जो विवर्जित है, वही उसने किया। मन-ही-मन उसने एक पर-पुरुष को चाहा है।

इस उत्तर पर मनोरमा का पति मन-ही-मन अपनी हंसी न रोक पाया। उसने परिहास के ढंग से लिख भेजा—

निस्सन्देह माधवी मुंहझौंसी ही है। क्योंकि उसने मन-ही-मन विधवा होने पर भी पर-पुरुष को चाहा है। यह तुम्हीं लोगों के अधिकार का प्रश्न है कि विधवा होते हुए भी उसने सधवापन की परिकल्पना की, सो तुम्हीं नाराज हो उठीं। मेरे जीते-जी तुम्हारे लिए चिन्ता का प्रश्न नहीं है, सो इस सुयोग को अपने हाथों से न जाने देना। इस थोड़े-से समय में तुम भी किसी पर-पुरुष से वेशक प्रेम कर लो। किन्तु मनोरमा, तुम्हें पता होना चाहिए कि तुम्हारे पत्र मुझे तनिक भी विस्मित नहीं कर पाये। एक बार मैंने एक ऐसी लता को देखा था कि जो अधिकतर धरती पर रेंगने के वाद अन्त में एक पेड़ का आधार पा उसी पर चढ़ गयी थी। जाने अब उस लता पर कितने पत्र-पुष्प और मंजरी हैं? तुम्हारे यहां आने पर हम दोनों उसे देखने के लिए साथ मिलकर चलेंगे।

बिगड़कर मनोरमा इस पत्र का कुछ भी उत्तर न दे सकी।

माधवी के नयन-कोर धुंधला उठे। उसका खिला आनन जैसे धुंधलाकर स्तम्भित-सा हो गया था। काम-काज करने में भी अब मन शिथिलाने लगा था। अब तो सबके साथ आत्मीयता का भाव बनाये रखने तथा सबकी देख-भाल की भावना उसमें पहले से भी प्रबल हो उठी थी। किन्तु उसकी स्मरण-शक्ति अब पूर्ववत न रही और वह कुछ भुलक्कड़-सी हो गयी।

सभी लोग अब भी उसे 'वड़ी दीदी' नाम से ही सम्बोधित करते हैं। अब भी सभी का ध्यान उस कल्प-वृक्ष की ओर रहता है। लोग उसी के सामने हाथ फैला इच्छित फल पाते हैं। किन्तु इस वृक्ष में अब पहले जैसी सरसता नहीं रही। पुराने व्यक्ति तो जैसे आशंकित हो उठते हैं कि यह कल्प-वृक्ष कहीं सूख ही न जाये अन्त में।

नित्यप्रति आकर मनोरमा अन्य सभी बातें करती है, बस एक चर्चा अब वह नहीं करती। उसने समझ लिया है कि इस चर्चा से माधवी को दुख होता है। अतः यह चर्चा जितनी न हो, उतना ही ठीक है। मनोरमा सोचती है—काश ! अभागी इस सबको भुला सकती !

उधर सुरेन्द्रनाथ ठीक-ठाक हो अपने घर पहुंच गया है। उसकी सौतेली मां अब पहले के समान उसके प्रति सचेष्ट नहीं रहती। इस कारण सुरेन्द्र कुछ मुक्ति का आभास पाने लगा है। तो भी वह पूर्णतया मुक्ति का अनुभव नहीं कर पाता। कोई वेदना है उसके अन्तराल में ! रूप-यौवन की इच्छा-आकांक्षा का आभास अभी तक वह अपने मन-मस्तिष्क में नहीं पा सका। उनके सम्बन्ध में तो जैसे वह सोच ही नहीं पाता। अब भी वह पूर्ववत अनमना तथा आत्मनिर्भरता के भाव से विरहित है। किन्तु अपनी निर्भरता का स्थान भी वह नहीं खोज पाता। इस कारण वह अपना आप स्वयं ही देख पाता हो, ऐसी बात भी नहीं। आज भी वह अपने कार्यों के लिए दूसरों का मुंह ही निहारता रहता है। किन्तु अब पूर्ववत उसका मन किसी काम में नहीं रम पाता। उसे कहीं-न-कहीं किसी कमी का आभास मिलता ही रहता है। अतः असन्तुष्टि का आभास उसमें बढ़ गया है। यह सब देख-सुन उसकी सौतेली मां कहती है—

आजकल सुरेन्द्र में तो परिवर्तन आ गया है।

एक रोज वीच में उसे बुखार हो गया था। अत्यधिक कष्ट के कारण उसके नयना वरसने लगे। सौतेली मां समीप ही बैठी थी। उसने आज कुछ नवीन ही अनुभव किया और उसके नयना भी बरसने लगे। अत्यधिक स्नेह से उसके आंसू पोंछ वह बोली—

हुआ क्या, बेटे सुरेन्द्र ?

सुरेन्द्र मौन रहा। उसके वाद सुरेन्द्र ने एक पोस्टकार्ड मंगवाकर टेढ़े-मेढ़े अक्षरों में उस पर लिखा—

बड़ी दीदी ! मुझे ज्वर हो रहा है और मैं अत्यधिक कष्ट पा रहा हूं।

किन्तु वह पत्र पोस्ट न हो सका। पहले पलंग पर पड़ा रहा, फिर धरती पर गिर पड़ा और उसके बाद जो बुहारने आया वह अनारदाने, विस्कुटों के टुकड़ों और अंगूर की इन्द्रियों के साथ उसे भी बुहारकर ले गया। सुरेन्द्र की अभिलाषा मिट्टी में मिल, वायु में लहरा, ओंस से सिक्त हो, धूप से सूखे बबूल के एक पेड़ तले ही पड़ी-पड़ी मुरझा गयी।

कुछ दिन तो वह उत्तर की आकांक्षा में रहा और फिर हस्ताक्षरों की ओर टकटकी बांधे। किन्तु काफी दिन बीत जाने के बाद भी उसकी इच्छा प्रतिफलित न हुई। उसका ज्वर भी धीरे-धीरे जाता रहा और वह चारपाई से उठ गया।

फिर उसके जीवन में एक अन्य घटना घटित हुई—नवीन ! नवीन होते हुए भी घटना स्वाभाविक थी। सुरेन्द्र के पिता राय महाशय को पहले से ही इसका पता था और आशा में भी थे। सुरेन्द्र के नाना पबना जिले में एक मध्यवर्गीय भूस्वामी थे। वीस-पच्चीस गांवों की उस जमींदारी से उन्हें पचास हजार वार्षिक के लगभग आय थी। लड़का-वाला न होने के कारण पहले तो कुछ खर्च ही न था, उस पर उनकी कंजूसी भी काफी प्रसिद्ध थी। उन्होंने अपने लम्बे जीवन में बहुत धन जोड़ा था। राय महोदय को सुनिश्चित ज्ञात था कि उनके बाद वह सारी सम्पत्ति उनके दोहते सुरेन्द्रनाथ राय को ही प्राप्त होगी। यही हुआ। उन्हें समाचार मिला कि वे रोग-शैया पर पड़े मृत्यु की घड़ियां गिन रहे हैं। अतः शीघ्र ही वे लड़के

के साथ पवना की ओर चल दिये। किन्तु जब तक वे पहुंचे राय महोदय के ससुर स्वर्ग सिधार चुके थे। अत्यधिक उत्सव के रूप में उनका श्राद्ध आदि संस्कार सम्पन्न किया। सुव्यवस्थित जमींदारी का प्रबन्ध पहले से भी अधिक व्यवस्थित हो गया। पुराने वकील तथा पकी-मंजी बुद्धि वाले राय महोदय के प्रवन्ध ने जमींदारी की प्रजा को और भी उत्पीड़ित कर दिया।

सुरेन्द्रनाथ का विवाह कर देना भी अब जरूरी हो उठा। विवाह के प्रवन्धार्थ आने-जाने वाले नहियों की गहमा-गहमी में सारा गांव जैसे आन्दोलित हो उठा। आस-पास के पचास कोसों के भीतर जिस घर में भी सुन्दरी कन्या के विवाह होने का समाचार मिलता, नहियों के चरण-कमल बार-बार उस घर तथा मां-बाप की शोभा बढ़ाने लगे। इसी व्यवस्था में चार-छह मास पार हो गये। अन्त में सौतेली मां, उसके रिश्ते-नातेदार तथा अन्यान्य वन्धु-बान्धव भी आ गये। जिस कारण सारा घर-आंगन पट-सा गया।

और तब एक रोज—! तुरही, ढोल-ढमक्के, खड़तालों आदि की तुमुल ध्वनि से समस्त गांव को मुखरित करते हुए सुरेन्द्रनाथ राय ने विवाह किया।

# सात

पांच वर्ष के लगभग और समय सरक गया।

न तो राय महोदय ही अब जीवित हैं और न ब्रजपाल लाहिड़ी ही। सुरेन्द्र की सौतेली माता अपने पति द्वारा प्रदत्त समस्त सम्पदा के साथ पितृ-गृह में निवास करती है।

इन दिनों सुदेन्द्रनाथ की सुख्याति और कुख्याति दोनों साथ-साथ ही चल रही हैं। लोगों में विभिन्न धारणाएं हैं। कुछ तो उसे प्रजा-पालक,

सहृदय, उदार जमींदार कहते हैं और कुछ की धारणा इसके एकदम विप-रीत उत्पीड़क, शोषक तथा अत्याचारी के रूप में है। ऐसा शोषक तो कभी इस प्रदेश में जन्मा ही नहीं।

वास्तव में दोनों ही धारणाएं यथार्थ हैं। किन्तु पहली धारणा का सीधा सम्बन्ध है सुरेन्द्रनाथ के अपने उदार चरित्र से और दूसरी धारणा का सम्बन्ध है उनके मैनेजर बाबू मथुरानाथ के प्रबन्ध से।

सुरेन्द्रनाथ की बैठक में आजकल मित्र-मंडली की खूब छनती है। मौज से वे लोग अपनी सांसारिक इच्छाएं पूर्ण करते हैं। पान-तम्बाकू, शराब-कबाब सभी ओर से वे पूर्ण निश्चिन्त रहते हैं। सभी कुछ जैसे स्वयं ही मुंह में आ जाता है। मैनेजर मथुरा बाबू इन कामों में खूब उत्साहित रहते हैं। वे बिना जमींदारी को कुछ हानि पहुंचाये इन कार्यों के लिए धन इकट्ठा करते हैं। उनके प्रबन्ध की सुदक्षता के कारण सारा खर्चा प्रजा को ही उठाना पड़ता है। किसी के यहां मथुरा बाबू का एक पैसा भी शेष नहीं बच सकता। किसी के घर को आग लगवा देने, घर उजाड़ किसी को गांव से बाहर निकाल देने या जेल की अंधेरी कोठरी में बन्द करवा देना आदि उनके बाएं हाथ का खेल है। इस कार्य का उनके मन में असीम उत्साह रहता है।

प्रजा का इस प्रकार से रोना-चिल्लाना शान्ति देवी के कानों में भी पहुंचता रहता है। वह उपालम्भ भरे स्वरों में अपने पति से कहती है—यदि जमींदार की देख-भाल स्वयं ही न करोगे तो जलकर सभी कुछ राख हो जायेगा एक रोज।

जैसे चौंकते हुए सुरेन्द्रनाथ कह उठता है—यही तो! क्या इन समस्त बातों में सच्चाई है?

सच्चाई क्यों नहीं? सारे गांव खेड़े में निन्दा हो रही है। जाने क्यों तुम्हारे कानों तक वह नहीं पहुंच पाती! जब चौबीसों घंटे यार-दोस्तों से ही घिरे रहोगे तो सुनायी भी कैसे देंगी ये बातें! इस प्रकार के मैनेजर को रखने की आवश्यकता नहीं। निकाल दो इसे बाहर!

हतप्रभ एवं दुखी होकर सुरेन्द्रनाथ कह देता—अच्छा। कल से मैं स्वयं सब काम-काज देखा करूंगा।

और तब कुछ रोज के लिए जमींदारी के काम-काज देखने का समां बंध जाता। मैनेजर मथुरानाथ घबराकर गम्भीर भाव से कहते—

सुरेन्द्र बाबू, इसी प्रकार से जमींदारियां चला करती हैं क्या ?

नीरस हास से साथ सुरेन्द्रनाथ उत्तर देता—मथुरा बाबू ! दीन-दुखियों का शोषण कर जमींदारी चलाने की आवश्यकता नहीं।

तब मुझे छुट्टी दे दें। मुझे चला जाना चाहिए।

बस, सुरेन्द्र नर्म पड़ जाता और फिर सब-कुछ पहले के समान ही चलने लगता। सुरेन्द्रनाथ का संसार फिर बैठक तक सीमित हो जाता।

उसके बाद एक नया रंग उमड़ आया। एक बंगला बनवाया गया और उसके इर्द-गिर्द बगीचा लगवाया गया। कलकत्ता की एक प्रसिद्ध वेश्या एलोकेशी वहां आकर ठहरी। नाचने-गाने में तो अत्यधिक अच्छी है ही, रूप-रंग में भी बुरी नहीं। टूट गये मधु के छत्ते से विलग हो जाने वाली मधुमक्खियों के समान मित्र-मंडली अब बगीचे में जाकर मंडराने लगी। उन लोगों का आनन्दोत्सव, उत्साह असीमित हो उठा। सुरेन्द्रनाथ को भी उन्होंने उसी ओर आकर्षित कर लिया।

लगातार तीन रोज से शान्ति देवी को पतिदेव के दर्शन न हो सके। चौथे रोज जब दर्शन हुए तो द्वार पर पीठ टेक वह डट गयी और पूछा—

कहां रहे इतने रोज ?

बगीचे में रहा।

किसके लिए लगातार तीन रोज तक वहीं पड़े रहे ? आखिर है कौन वहां ?

यही तो…!

यही तो ही सब बातों में ! सब सुन लिया है मैंने।—और कहती हुई शान्ति रोने लगी। बोली—आखिर क्या अपराध बन पड़ा है मुझसे कि यों ठोकरें मारने लगे हो पैरों से ?

कहां ? मैं तो…।

और कैसी ठोकरें मारी जाती हैं ? इससे बड़ा अपमान हमारे लिए अन्य कौन-सा हो सकता है ?

यही तो !…वे सब जने…।

जैसे शान्ति ने यह सब सुना ही नहीं। और वह भी रुआंसी होते हुए कहने लगी—मेरे पति हो तुम--मेरे देव, मेरा लोक-परलोक सभी कुछ तुम्हीं से है। क्या मैं तुम्हें पहचानती भी नहीं? मुझे पता है कि मैं तुम्हारी कुछ भी नहीं लगती। एक रोज के वास्ते भी मैं तुम्हारा मन नहीं पा सकी। कौन बतावे तुम्हें मेरी मनोव्यथा? तुम्हें लज्जा तथा कष्ट न हो, इसलिए मैं कुछ भी नहीं कहना चाहती।

तुम रोती क्यों हो, शान्ति?

रोती क्यों हूं? वह घट-घट वासी ही जानता है यह सब! मुझे पता है कि तुम बेखबर नहीं हो और दुखी है तुम्हारा मन भी! और कर भी क्या सकते हो तुम?—और तदनन्तर अपनी आंखें पोंछती हुई वह कहने लगी—जीवन-भर यदि मैं पीड़ित भी रहूं तो क्या? किन्तु यदि तुम्हारा कष्ट जान पाती···?

उसे अपने समीप खींच, उसकी आंखें पोंछते हुए सुरेन्द्रनाथ कहने लगा—शान्ति, क्या करोगी तब?

इस बात का उत्तर क्या हो सकता था भला? बस, शान्ति ने फूट-फूटकर रोना आरम्भ कर दिया। काफी देर तक रो लेने के बाद शान्ति बोली—

आज तुम्हारा स्वास्थ्य भी ठीक नहीं।

आज ही क्यों, विगत पांच वर्षों से ठीक नहीं है। जिस रोज मैं कलकत्ता में गाड़ी की लपेट में आ गया था और पीठ तथा छाती में चोट लगी और लगातार महीना-भर चारपाई पर पड़ा रहा—तभी से स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता। वह पीड़ा किसी भी प्रकार से जाने ही नहीं पायी। मुझे स्वयं कभी-कभी विस्मय होने लगता है कि जीवित कैसे हूं?

पति की छाती पर शीघ्रतापूर्वक हाथ रखती हुई शान्ति बोली—चलो गांव छोड़कर हम लोग कलकत्ता चलें, वहां बहुत ही अच्छे-अच्छे डॉक्टर हैं।

सहसा प्रसन्नता से उछलकर सुरेन्द्रनाथ बोला—ठीक है, चलो! बड़ी दीदी भी वहीं हैं।

शान्ति कहने लगी—तुम्हारी बड़ी दीदी को देखने की मुझे भी बड़ी-

इच्छा होती है। लाओगे न उन्हें ?

क्यों न लाऊंगा ?—कुछ क्षण सोचकर उसने पुनः कहा—जब उन्हें पता चलेगा कि मैं मर रहा हूं, वे अवश्य ही आयेंगी।

सुरेन्द्र के मुंह पर हाथ रख शान्ति बोली—पांओं पड़ती हूं तुम्हारे मैं ! ऐसी बातें न किया करो।

यदि वे आ जायें तो फिर मुझे तनिक भी कष्ट न रह जाए !

शान्ति का अन्तराल अभिमान से भर उठा। अभी-अभी ही वह कह चुकी है कि पति उसके कुछ भी नहीं, तनिक भी खयाल नहीं रखते। किन्तु सुरेन्द्र ने न तो इसे समझा ही और न इस बात की परवाह ही की। वह तो अपने कथन में ही आनन्द का अनुभव कर रहा था। कहने लगा—-

बड़ी दीदी के पास जा तुम खुद ही उन्हें बुला लाना। ठीक होगा न यह ?

शान्ति ने सम्मति-सूचक सिर हिला दिया।

उनके आने पर तुम स्वयं समझ लोगी कि मेरा सारा दुख कैसे अपने आप ही दूर हो गया है।

शान्ति के नयनों से अजस्र जल-धारा फूट निकली।

अगले रोज दासी के द्वारा शान्ति ने मथुरा बाबू को कहला भेजा कि बगीचे वाले बंगले में जिसे लाकर बिठाया गया है, यदि इसी क्षण उसे वहां से निकाल न दिया गया तो उसकी मैनेजरी की आवश्यकता भी न रह जाएगी। वह अपने पति से भी बिगड़कर कहने लगी—

चाहे जो भी हो, यदि तुमने घर से बाहर कदम रखा तो द्वार पर सिर पटक मैं खून की नहर बहा दूंगी और प्राण समाप्त कर लूंगी।

अच्छा ! किन्तु वे लोग···?

मैं इस किन्तु का प्रबन्ध भी किए देती हूं।

यह कहकर शान्ति ने दासी को बुलाकर आदेश दिया कि द्वारपाल से कह दे कि वे समस्त कम्बख्त लोग अब उस घर में कदम न रखने पावें।

अन्य कोई भी मार्ग न पाकर मैनेजर मथुरा बाबू ने एलोकेशी को वहां से भेज दिया। यार लोग भी दुम दबा गये। अब मथुरा बाबू जमींदारी की देख-भाल में दत्तचित्त हो गए।

सुरेन्द्रनाथ का फिलहाल कलकत्ता जा सकने का कार्यक्रम न बन सका। छाती की पीड़ा कुछ कम मालूम होने लगी। शान्ति के मन में भी कलकत्ता जाने के लिए पूर्व-उत्साह न रह गया। वहीं पर रह वह हर-सम्भव उपाय से पति की देख-भाल करने लगी। एक अच्छा डॉक्टर कलकत्ता से बुलाकर उससे परीक्षा करवा ली गयी। उस विद्वान डॉक्टर ने ठीक से परीक्षा करके दवाई का प्रबन्ध कर दिया। उसने यह हिदायत दे दी कि छाती की वर्तमान स्थिति को देखते हुए शारीरिक अथवा मानसिक परिश्रम ठीक न रहेगा।

समयानुसार मैनेजर साहब की जमींदारी की व्यवस्था के परिणाम-स्वरूप चारों ओर ग्रामों में कुहराम मच गया। सब सुनकर भी शान्ति पति से कुछ कहने का साहस न कर पाती।

## आठ

उधर कलकत्ता में ब्रज बाबू के घर का मालिक आजकल शिवचन्द्र है और मालकिन का स्थान बड़ी दीदी के स्थान पर नयी बहू को मिल गया है। माधवी आजकल भी वहीं रहती है, उसकी दादा शिवचन्द्र यथेष्ट आदर मान भी करता है, किन्तु माधवी का अपना मन ही जैसे अब उस वातावरण में घुटने लगा है। घर के सभी नौकर-नौकरानियां, गुमाश्ता आदि अब भी उसे 'बड़ी दीदी' के नाम से ही सम्बोधित करते हैं, किन्तु साथ ही सबको इस बात का भी आभास है कि चाबियां अब किसी अन्य के हाथ ही में हैं। यह भी नहीं कि शिवचन्द्र की पत्नी कभी किसी कारण से माधवी के प्रति उपेक्षा या अपमान का भाव प्रदर्शित करती हो, तब भी कभी-कभी उसके व्यवहार में यह भाव अवश्य झलक पड़ता है कि उस नवागन्तुका की इच्छा-सलाह के बिना अब उस घर में कुछ करना शोभनीय नहीं।

तब पिता का अधिकार था, अब दादा (भैया) का राज्य है। अतः

कुछ अन्तर आना अनिवार्य है। पहले सम्मान के साथ-साथ उसका हठ भी चलता था, अब सम्मान अवश्य है, किन्तु हठ के लिए स्थान नहीं। पहले पिता स्वयं सम्मान देते थे, अतः घर की सर्वेसर्वा वही थी, किन्तु अब वह घर की एक आत्मीय सदस्या मात्र बनकर रह गयी है।

इस सारे परिवर्तन के कारण शिवचन्द्र अथवा उसकी पत्नी पर किसी प्रकार का दोषारोपण करना हमारे अभिप्राय के प्रति नासमझी प्रकट करना होगा। हम किसी भी प्रकार से निन्दा या कोई दोष उन पर नहीं मढ़ना चाहते। हम तो संसार के नियम-विधानों तथा रीति-नीतियों की ही बात कह रहे हैं।

माधवी का भाग्य फूट चुका है और अपना कहने के लिए उसका कोई नहीं रह गया, मात्र इसी वजह से भला कोई अपना अधिकार काहे को त्यागने लगा? इस बात से भी कोई इन्कार कर सकता है कि पति नाम की वस्तु पर पत्नी का ही आधिपत्य होता है? शिवचन्द्र की पत्नी भी तो इस तथ्य को भली प्रकार समझती है। शिवचन्द्र तो भला भैया हैं माधवी का, किन्तु वह कौन होती है उसकी? फिर भला किसी अन्य के लिए वह अपने अधिकारों को तिलांजलि क्यों और कैसे दे दे?

माधवी इन समस्त बातों को भली-भांति समझती है। जब वह छोटी थी, तब माधवी की दृष्टि में प्रमिला तथा बहू में किसी प्रकार का भी भेद-भाव न था। किन्तु अब तो समस्त कार्य-व्यापारों में भेद स्पष्ट है। हमेशा से स्वाभिमानिनी होने के कारण वह अब सबसे हीन है। क्योंकि वह किसी की बात सहन नहीं कर पाती, अतः वह किसी से कुछ कहती भी नहीं। जहां बल नहीं वहां सिर ऊंचा करके खड़े होने से तो उसके कट जाने का ही भय है। अतः अपने दुख को वह शिवचन्द्र से भी न कह मौन भाव से स्वयं ही सहन कर लेती है। स्नेह का ढिढोरा पीट सकना उसके बस की बात नहीं। केवल स्नेह की दुहाई दे अपने अधिकार के लिए सचेष्ट होना उसके तन-मन के लिए धिक्कारपूर्ण है। सामान्य नारियों के समान लड़ाई-झगड़े से वह अत्यधिक घृणा करती है।

एक रोज शिवचन्द्र को बुलाकर उसने कहा—दादा, मैं ससुराल जाना चाहती हूं।

विस्मित हो शिवचन्द्र ने पूछा—क्यों माधवी ? वहां रहा ही कौन है ?

अपने मृत पति की ओर संकेत करते हुए माधवी बोली—काशी में ननद के पास उनका छोटा भानजा है। उसे साथ लेकर मैं गोला गांव में आनन्दपूर्वक रह सकूंगी।

गोला गांव पबना जिले में था, जहां कि माधवी का ससुराल पड़ता था। तनिक हंसते हुए शिवचन्द्र बोला—ऐसा भी कहीं हो सकता है भला ? वहां तुम्हें बहुत कष्ट सहना पड़ेगा।

कष्ट क्यों होने लगा, दादा ? मकान तो वहां है ही। उस पर पांच-दस बीघे जमीन भी है। इतने से क्या एक विधवा का काम न चल सकेगा ?

काम चलने या रुपये-पैसे की चिन्ता नहीं। किन्तु तो भी तुम्हें वहां कष्ट होगा, माधवी !

तनिक भी कष्ट न होगा।

कुछ सोचते हुए शिवचन्द्र बोला—आखिर तुम जाना क्यों चाहती हो, दीदी ? मुझे सब स्पष्ट बता दो ताकि मैं उस झंझट का अन्त कर सकूं ?

लगता है, इससे पहले शिवचन्द्र ने माधवी के खिलाफ अपनी पत्नी से अवश्य कुछ लाग-लपेटयुक्त सुना होगा और उन्हीं बातों का उसे इस समय स्मरण हो आया शायद !

माधवी लज्जारुण हो गयी और कहने लगी---क्या तुम यह समझते हो दादा, कि मैं लड़-झगड़कर तुम्हारे घर से जाना चाहती हूं ?

लज्जित भाव से शीघ्रता में शिवचन्द्र बोला—नहीं, ऐसा कुछ भी नहीं। यह कब कहता हूं मैं ? किन्तु जब यह घर हमेशा ही तुम्हारा है, तो फिर क्यों छोड़ जाना चाहती हो आखिर ?

दोनों को तत्काल ही पितृ-ममता का स्मरण हो आया। दोनों के नयन सजल हो उठे। नयन पोंछते हुए माधवी बोली—फिर आऊंगी मैं। जब तुम्हारे नन्हें का यज्ञोपवीत-संस्कार होगा, तो मुझे ले आना जाकर। अब तो मुझे जाने ही दो।

उसमें तो अभी आठ-दस वर्ष बाकी हैं।

यदि उस समय तक जीवित रही तो अवश्य आऊंगी मैं।

किसी भी प्रकार माधवी वहीं बनी रहने के लिए तैयार न हुई और प्रस्थान की व्यवस्था करने लगी। उसने बहू को घर का समस्त प्रबन्ध बता दिया और नौकर-नौकरानियों को बुलाकर स्नेहाशीष दिए। जिस रोज उसे जाना था, सजल नयन शिवचन्द्र उसके समीप आकर कहने लगा—

माधवी, तुम्हारे इस दादा ने तो तुमसे कभी कुछ नहीं कहा।

माधवी बोली—कैसी बातें करते हो, दादा?

यदि किसी बुरी घड़ी में असावधानी से मुंह से कुछ अशुभ बात···।

नहीं दादा! ऐसा कुछ भी नहीं।

सत्य बोलती हो?

हां, सच कहती हूं।

जाओ तब। अपने घर जाने से तुम्हें रोकूंगा नहीं। जहां रुचे तुम्हें, वहीं रहो। किन्तु अपना कुशल-समाचार हमेशा भेजते रहना न भूलना।

माधवी पहले काशीजी गयी। वहां से अपने भानजे को संग ले लम्बे सात वर्षों के बाद उसने गोला गांव में आकर अपने पति-गृह में प्रवेश किया।

माधवी के पहुंचने से गोला गांव के चटर्जी महाशय के सामने तो मानो विपदा का पहाड़ खड़ा हो गया। योगेन्द्रनाथ के पिता के साथ उनकी गहरी मैत्री थी। इस कारण मृत्यु के समय योगेन्द्रनाथ ने अपनी कई बीघा जमीन उन्हें सहेज दी थी। जब तक योगेन्द्रनाथ जीवित रहा, उसकी जमीन की देख-भाल का कार्य उन्हीं के हाथों में रहा। योगेन्द्रनाथ ने तो कभी उसकी विशेष चिन्ता ही न की थी। ससुर के पास अत्यधिक धन होने के कारण अपनी इस पैतृक सम्पत्ति की ओर उनका कभी ध्यान ही न गया था। जब उनकी मृत्यु हो गयी तो चटर्जी महोदय उसे अपना ही नैयायिक अधिकार समझ धरती से आय का भोग करने लगे। इतने रोज बाद विधवा माधवी ने पहुंच उनकी बंधी गृहस्थी की राह में सहसा एक बवंडर-सा खड़ा कर दिया था। अतः चटर्जी महोदय को माधवी का आगमन एक अनाधिकार चेष्टा के समान प्रतीत हुआ। वे केवल इतना ही समझ सके कि यह कदम माधवी ने मात्र ईर्ष्या-डाह के कारण ही उठाया है। अत्यधिक क्रोधावेश में भर आकर उन्होंने मधवी से कहा—

देखो बहू, तुम्हारी दो बीघा धरती का लगान पिछले दस वर्ष से सूद

आदि सहित एक सौ रुपये के लगभग बकाया पड़ा है। यदि वह न चुकाया गया तो तुम्हारी धरती की नौबत नीलामी तक पहुंच जायेगी।

अपने भानजे द्वारा माधवी ने रुपयों की चिन्ता न करने के लिए तो कहला ही भेजा, साथ ही एक सौ रुपया भी तुरन्त भिजवा दिया। निश्चय ही वे रुपये चटर्जी महोदय के अपने काम में आये।

माधवी भी यों ही छोड़ देने वाली न थी। उसने सन्तोष से कहलवा भेजा कि मेरे स्वर्गीय ससुर का परिवार केवल दो बीघा पर ही न पलता था, बल्कि अन्य जमीन भी थी। सो बताया जाये कि वह कहां और किसके अधिकार में है?

अत्यधिक क्रोध में भरकर स्वयं उपस्थित होकर चटर्जी महोदय ने उत्तर दिया—बिक गयी वह सब जमीन। बाकी कुछ का प्रबन्ध किया हुआ है। लगातार आठ-दस वर्ष तक लगान चुकता न करने पर वह जमीन कैसे रह सकती थी?

माधवी बोली—उस धरती से आय भी तो होती थी। फिर क्यों लगान न चुकाया गया? वास्तव में यदि धरती की बिक्री हो ही गयी है तो बताया जाये कि उसे किसने बेचा और अब उसका मालिक कौन है? सब पता चलने पर छुड़वाने का कुछ प्रबन्ध किया जाये और तत्सम्बन्धी कागज-पत्र किसके पास हैं?

अवश्य ही चटर्जी ने इन प्रश्नों के उत्तर गढ़कर दिये, किन्तु माधवी की समझ में कुछ भी न आया। ब्राह्मण देवता पहले तो जाने क्या बड़बड़ाते रहे और अन्त में छाता तान, रामनामी से कमर कस, एक अंगोछे में धोती लपेट लालता गांव में जमींदार साहब की कचहरी की ओर चल दिये। इसी गांव में सुरेन्द्रनाथ का मकान एवं उनके मैनेजर मथुरा बाबू का ऑफिस था। चटर्जी महोदय आठ-दस कोस की मंजिल पैदल मारकर सीधे मथुरा बाबू की शरण में जा पहुंचे। वे बिसुरते हुए उन्हें कहने लगे—

सरकार की दुहाई। शायद इस निर्धन ब्राह्मण को अब गांव-गांव और गली-गली में भीख मांगकर अपना परिवार पालना पड़े!

बहुत लोग यही बातें कहते आया करते हैं। मुंह मोड़कर मथुरा बाबू ने कहा—हुआ क्या?

मुझे बचाओ दादा !

कुछ बताओ भी तो ?

उस चटर्जी महाशय ने माधवी से ही प्राप्त एक सौ रुपये का नोट मथुरा बाबू के हाथ पर टेकते हुए कहा—धर्मावतार, यदि आप मुझे न बचाओगे, तो मेरा सब-कुछ नष्ट हो जायेगा ।

हुआ क्या ? यह तो स्पष्ट बताओ ?

गोला गांव के रामतनु सान्याल की विधवा पुत्र-वधू इतने दिनों बाद जाने कहां से टपक, मेरी जमीन पर अपना अधिकार जमा दखल कर लेना चाहती है ।—और ब्राह्मण महाशय ने हाथ में यज्ञोपवीत पकड़कर मैनेजर बाबू का हाथ दबाते हुए फिर कहा—पिछले दस सालों से मैं लगातार सरकारी लगान आदि चुकता करता आ रहा हूं ।

जब जमीन जोतते-बोते हो तो लगान नहीं चुकता करोगे क्या ?

सरकार की दुहाई !

उसके भाव को ताड़ मथुरा बाबू बोले—उस विधवा को टरकाना चाहते हो न ?

चुपचाप निहारते रहे ब्राह्मण देव !

कितने बीघे जमीन है ?

कुल पच्चीस बीघे ।

हिसाब लगाते हुए मथुरा बाबू बोले—तीन हजार रुपये की जमीन कम-से-कम है । जमींदारी-कचहरी में कितने की सलामी दे सकोगे ?

जो आज्ञा होगी हजूर, ऐ तीन सौ रुपये तक !

तीन सौ रुपये देकर तीन हजार की धरती हड़प जाना चाहते हो ! तो हमसे कुछ न हो सकेगा, जाओ ।

शुष्क नयनों से जलपान करते हुए ब्राह्मण बोला—तब कितने रुपये की आज्ञा देते हैं ?

एक हजार चुका सकोगे ।

और तब काफी देर तक दोनों में चुपचाप दुरभि-सन्धि चलती रही । परिणामास्वरूप योगेन्द्रनाथ की विधवा माधवी पर पिछले दस वर्ष की मालगुजारी न चुकाने के लिए मय सूद डेढ़ हजार रुपये की नालिश दर्ज

करा दी गयी। समन जारी हुए, किन्तु माधवी तक न पहुंचे। तत्पश्चात एकतरफा डिग्री हो गयी। कोई डेढ़ मास के बाद माधवी को सूचना मिली कि लगान की बकाया रकम को वसूल करने के लिए जमींदार की ओर से उसकी जमीन नीलाम करने का विज्ञापन प्रकाशित हुआ है। सो उसके अन्तर्गत उसकी समस्त सम्पदा कुर्क कर ली गयी है।

एक पड़ोसिन को बुलाकर माधवी ने उससे पूछा—क्या इस देश में एकदम लुटेरे-डाकू ही रहते हैं?

क्यों? हुआ क्या?

क्या नहीं हुआ? एक व्यक्ति छल से मेरा सर्वस्व अपहरण कर लेना चाहता है और तुम लोगों को खबर तक नहीं?

वह बोली—हम लोग कर ही क्या सकती हैं। जब जमींदार नीलामी ही चाहता हो, हम निर्धनों का चारा ही क्या हो सकता है?

अच्छा! जो जमीन के सम्बन्ध में हो गया, सो तो हो ही गया, किन्तु कितना विचित्र है कि मेरे घर की नीलामी की मुझे ही सूचना नहीं! यह तुम लोगों के जमींदार हैं किस तरह के!

उस नारी से विस्तारपूर्वक सभी कुछ बताने के बाद कहा—इस प्रकार का शोषक जमींदार और शोषण पहले कभी भी इस प्रदेश में नहीं हुआ।

वह और भी पता नहीं क्या-कुछ बताती रही। उसने अब तक इधर-उधर से जो कुछ भी सुना था, सभी कुछ कह दिया।

भीत-सी हो माधवी ने पूछा—यदि मैं स्वयं जमींदार साहब से भेंट करूं तो क्या कुछ नहीं हो सकता?

अपने भानजे सन्तोषकुमार की खातिर माधवी ऐसा करने के लिए प्रस्तुत थी। उस स्त्री ने तत्काल तो कुछ भी मन्तव्य न दिया, किन्तु वायदा कर गयी कि अपने लड़के द्वारा पूर्व जानकारी प्राप्त करके वह निश्चित रूप से कुछ कह सकेगी।

उस नारी का भानजा दो-तीन बार लालता गांव हो आया था। उसे जमींदार की अनेक बातों से परिचय था। इतना ही नहीं, उसने बगीचे में ठहरी एलोकेशी वेश्या तक का समाचार सुन रखा था। जब मौसी ने रामतनु की पुत्र-वधू के जमींदार के साथ भेंट की बात उससे चलायी, तब

वह अत्यधिक गम्भीर भाव से बोला—

कितनी आयु है इस विधवा पुत्र-वधू की ?

मौसी ने उत्तर दिया—यही कोई बीस-इक्कीस की होगी।

सिर हिलाते हुए उसने प्रश्न किया—देखने में कैसी लगती है ?

मौसी बोली—एकदम अप्सरा जैसी !

यह सुन चेहरे पर एक विशेष भाव प्रकट करते हुए वह कहने लगा—भेंट करने से काम तो बन सकता है। किन्तु मैं तो यही सलाह दूंगा कि वह आज रात में ही नाव पर बैठ अपने पित्र-गृह को प्रस्थान कर जाये।

किसलिए ?

इसलिए कि तुम्हारे कथनानुसार देखने में वह अप्सरा जैसी है।

तब क्या हुआ ?

इसी से तो सब-कुछ होता है। अप्सरा जैसा रूप होने के कारण ही जमींदार सुरेन्द्रनाथ के यहां उनकी कुशल नहीं।

कपोलों पर हाथ रख मौसी ने कहा—कैसी बातें करते हो तुम ?

तनिक मुस्कराकर भानजा बोला—ठीक ही कहता हूं। सभी लोगों को इन बातों का पता है।

इस स्थिति में तो उसका भेंट करने जाना ठीक नहीं।

बिलकुल नहीं।

किन्तु उसकी सारी जायदाद तो जा रही है ?

चटर्जी महोदय के रहते जायदाद मिल जाने का प्रश्न ही नहीं उठता। यह तो एक भद्र घर की लड़की है, तो क्या अब उसका धर्म भी न बचे ?

अगले रोज उस नारी ने माधवी को सभी कुछ बता दिया। वह तो विस्मित-सी रह गयी। फिर सारा दिन वह उस जमींदार सुरेन्द्रनाथ के बारे में ही विचारती रही। वह सोचने लगी—सुरेन्द्रनाथ ! यह नाम तो अत्यधिक परिचित है ! किन्तु इस नाम का उस परिचित के साथ तो तनिक भी मेल नहीं ! जाने कितने दिन उसने मन-ही-मन इस नाम का स्मरण किया है ! लगातार पांच वर्ष बीत गये हैं। वह तो भूल ही गयी थी इस नाम को, कि फिर सहसा आज याद हो आया।

स्वप्न एवं नींद के अधबीच माधवी ने वह रात अत्यधिक उत्पीड़न में

व्यतीत की। पुराना स्मरण कर अनेक बार उसके नयन सजल हुए। डरते-डरते सन्तोष ने उसके मुंह को निहारकर कहा—

बुआ, मैं तो मां के पास जाऊंगा।

माधवी ने खुद भी अनेक बार इस बात को सोचा था। जब यहां कुछ रह ही नहीं गया तो काशीवास के सिवाय अन्य उपाय ही क्या है? उसने जमींदार के साथ भेंट करने की बात सन्तोष की खातिर ही सोची थी, किन्तु अब वह सम्भव नहीं। पास-पड़ोस के सभी गली-मुहल्ले वाले रोक रहे हैं। अब वह जहां भी जाकर रहे, एक नयी चिन्ता उसके गले पड़ गयी है। उसके सिवाय उसका रूप-यौवन भी साथ चिपका है।

सोचती रही माधवी—वह भी कैसी अभागी है? क्यों ये सब उत्पात अब भी उसके शरीर के साथ जुड़े हैं? विगत सात वर्षों से ये बातें न तो कभी उसके खयाल में ही आयीं और न किसी ने कभी उसे याद ही दिलाया। पति की मृत्यु के बाद जब वह पितृ-गृह में लौटी तो सभी ने उसे बड़ी दीदी और मां का सम्मान दिया। इन सम्बन्धों ने तो जैसे उसे वृद्धा ही कर डाला था। फिर रूप-यौवन कहां? जिस वातावरण में उसे बड़ी दीदी और मां का स्नेह बांटना था, वहां रूप-यौवन का क्या विचार? कुछ भी तो स्मरण न था उसे। अब जब ये याद हो आये हैं, तो चिन्ता ने भी आ घेरा, विशेषकर यौवन की चर्चा ने! म्लान और शर्मीली मुस्कान के साथ वह सोचने लगी—वहां के निवासी या तो नेत्रहीन हैं या जानवर!

किन्तु भूल थी यह माधवी की। सभी के मन-मात्र इक्कीस-बाईस की आयु में ही वृद्ध थोड़े हो जाते हैं!

इसके ठीक तीन दिन बाद जमींदार साहब का प्यादा आकर माधवी के मकान के सामने जम गया। मानो वह जमींदार सुरेन्द्रनाथ के इस नये मूल्य की ढोंढ़ी पीट रहा था।

सन्तोष का हाथ थाम और दासी को आगे कर माधवी नदी-तट पर जाकर नौका में सवार हो गयी। नाविक से कहा—सोमारपुर चलो। प्रमिला को भी देखती चलूं एक बार।

गोला गांव से लगभग पन्द्रह कोस की दूरी पर सोमारपुर है। वहीं प्रमिला की शादी हुई है। विगत वर्ष भर से वह अपने ससुराल में ही है।

वह कब फिर कलकत्ता जाये, पता नहीं माधवी तब कहां हो ? सो उससे मिल लेना उसने आवश्यक समझा ।

सूर्य निकला और नाविकों ने नाव छोड़ दी । धारा के बहाव की ओर नाव बहने लगी । वायु-गति विपरीत होने के कारण नाव बांसों के झुरमुट से घास-पात को धकेलती हुई बढ़ती गयी । सन्तोषकुमार असीमित रूप से आनन्दित हो रहा था । नाविक बोले—यदि हवा का रुख यही रहा तो कल दोपहर तक भी नाव सोमारपुर तक न पहुंच पायेगी ।

माधवी का तो आज एकादशी का व्रत था, किन्तु सन्तोषकुमार को तो कहीं नाव बांधकर खाना खिलाना ही पड़ेगा । नाविकों ने बताया—

यदि पिस्तेपाड़ा बाजार में नाव बांधेंगे तो सुविधा रहेगी । वहां खाने-पीने का यथेष्ट सामान उपलब्ध हो सकेगा ।

दासी ने उत्तर दिया—यही करो, दादा ! ताकि दस-ग्यारह बजे तक तो बच्चे को खाना मिल जाये ।

# नौ

कार्तिक मास का अन्त सन्निकट है । कुछ-कुछ शीत होने लगा है । प्रातः-कालीन रवि-रश्मियां खिड़कियों के रास्ते ऊपरी कमरे से प्रवेश कर अत्य-धिक सुख का आभास करा रही हैं । खिड़की के समीप ही अनेक बहीखाते खोले सुरेन्द्रनाथ बैठे थे । वे आज लेन-देन, बाकी, जमा-खर्च, माल-मुकदमा, व्यवस्था सभी प्रकार के हिसाब के पन्ने उलटते जांच कर रहे थे । यह सब देखना आजकल उनके लिए जरूरी -सा हो गया है । क्योंकि नहीं तो समय ही न कटता । फिर यह सब लेकर शान्ति के साथ अनेक प्रकार से झगड़ा भी होता रहता है । बड़ी कठिनता से उन्होंने शान्ति को समझाया है कि कुछ लिखे अक्षरों को देखने से ही छाती का दर्द नहीं बढ़ जाता । सो विवशतः शान्ति ने यह सब न केवल स्वीकार ही कर लिया है, अपितु

वह स्वयं भी इस कार्य में सहायता देने लगी है।

अपने पति पर आजकल शान्ति का पूर्ण आधिपत्य है। उसकी एक बात भी टाली नहीं जाती। कभी टाली भी न गयी थी। वह तो दस-पांच मित्र ही जुटकर मानो शान्ति को दुखित कर रहे थे। पत्नी के आदेश से अब सुरेन्द्रनाथ का घर से बाहर कदम रखना तक वर्जित है। शान्ति भी डॉक्टर की सलाह को जी-जान से पूर्ण कर रही है।

वह भी पास आकर लाल फीतों से कागज-पत्रों के बंडल बांधने लगी थी। एक कागज से सिर उठाकर सुरेन्द्रनाथ ने सहसा पुकारा—शान्ति !

शान्ति तो कहीं जा चुकी थी। कुछ क्षण बाद लौटकर उसने पूछा—

क्या मुझे पुकार रहे थे ?

हां। मैं तनिक दफ्तर जाना चाहता हूं ?

नहीं। जो आवश्यकता हो, मुझे बता दो। मैं ला देती हूं।

आवश्यकता तो कुछ नहीं। मुझे मथुरा बाबू से कुछ बातें करनी हैं।

यहीं बुलवा लेती हूं उन्हें। तुम्हारे जाने की आवश्यकता नहीं। क्या अभी उन्हें बुलाने की आवश्यकता है ?

उन्हें कहना है कि अगहन मास से उन्हें काम न करना होगा।

शंकित होने के साथ-ही-साथ सन्तुष्टि के भाव से शान्ति ने पूछा—क्या अपराध है उनका ?

अपराध तो अभी ठीक नहीं बतला सकता, किन्तु उनकी ज्यादती बढ़ती ही जा रही है।

और फिर अनेक कागज-पत्रों के साथ-साथ एक अदालती सनद को दिखाते हुए बोले—देखो तनिक ! गोला गांव की एक विधवा का सब घर-द्वार कुर्क करवाकर खरीद लिया है और मुझे सूचना तक नहीं।

दुखी स्वरों में शान्ति बोली—हाय ! विधवा का घर-द्वार ? बहुत बुरा हुआ ! किन्तु बिका किस प्रकार ?

उस पर विगत दस वर्षों का लगान शेष था। सूद आदि मिलाकर डेढ़ हजार का मुकदमा किया गया।

रुपयों की चर्चा सुन शान्ति का हृदय मथुरा बाबू के प्रति तनिक सहृदय हो उठा। मुस्कराकर कहने लगी—उसमें मैनेजर का दोष ही क्या

है ? इतनी बड़ी रकम वे छोड़ भी कैसे सकते थे ?

अनमना हो सुरेन्द्रनाथ विचारों में डूब गया।

शान्ति ने फिर पूछा—इतना रुपया छोड़ दिया जाये क्या ?

छोड़ा न जाए तो क्या एक निरुपाय विधवा को दर-ब-दर कर दिया जाएगा ? क्या तुम्हारी यही राय है ?

इस उक्ति में जो व्यथित चिंगारी छिपी थी, उसने शान्ति के अन्तर्मन को छू लिया। हतप्रभ एवं आर्त स्वरों में वह बोली—घर से दर-ब-दर करने की बात तो मैं नहीं कहती। फिर यदि अपना धन तुम दान भी करना चाहो तो मैं क्यों दखल देने लगी।

हंसते हुए सुरेन्द्र ने उत्तर दिया—यह बात नहीं, शान्ति ! क्या मेरा धन तुम्हारा नहीं ? किन्तु यह तो कहो, जब मैं न रहूंगा, तब तुम्हें…।

ओह ! क्या बातें करने लगे ?

जो मुझे रुचेगा, वही करोगी न तुम ?

शान्ति के नयन सजल हो उठे। उसे पता था कि पति की शारीरिक स्थिति ठीक नहीं। कहने लगी—ऐसी बातें करते ही क्यों हो ?

अत्यधिक अच्छी लगती हैं, तभी करता हूं। क्या तुम मेरी इच्छा-आकांक्षाएं न जानना चाहोगी, शान्ति ?

नयनों को आंचल से ढांप सिर हिला दिया शान्ति ने।

कुछ छणों के बाद सुरेन्द्रनाथ फिर बोला—यह नाम तो मेरी बड़ी दीदी का है।

सहसा नयनों से आंचल हटा शान्ति ने सुरेन्द्रनाथ के मुंह की ओर निहारा। सुरेन्द्रनाथ ने उसे एक कागज दिखाते हुए कहा—

देखो न यह, मेरी बड़ी दीदी का ही तो नाम है !

कहां ?

देखो यह—माधवी देवी, जिसका घर कुर्क किया गया।

एक क्षण में शान्ति की समझ में अनेक बातें आ गयीं। वह बोली—तभी सब लौटा देना चाहते हो, शायद !

हंसते हुए सुरेन्द्रनाथ ने उत्तर दिया—हां, उसी कारण ! अवश्य ही मैं लौटा दूंगा सब ! सब !!

माधवी के सम्बन्ध में सुन शान्ति का मन दुखित हो उठा। लगता है, उसके प्रति कुछ डाह-भाव था शान्ति के मन में। वह बोली—

यह भी तो सम्भव है कि यह तुम्हारी बड़ी दीदी नहीं हों। मात्र नाम ही तो माधवी है। केवल नाम मात्र से ही कैसे···?

वड़ी दीदी के नाम का मैं कुछ भी आदर न करूं?

चाहे करो, किन्तु उन्हें तो कुछ भी पता न चल सकेगा।

न चले! तो क्या मुझे सम्मान न करना चाहिए?

इस प्रकार के नाम तो अनेकों के हैं।

क्या दुर्गा नाम लिखकर तुम उस पर पैर रख सकोगी?

छिः! क्या वातें करने लगे? देवता का नाम···!

हंसकर सुरेन्द्रनाथ ने कहा—चलो, न सही देवता का नाम। यदि एक काम कर सको तो मैं तुम्हें पांच हजार रुपये दूंगा।

प्रसन्नता से शान्ति ने प्रश्न किया—कौन-सा है वह काम?

दीवार पर लटक रही अपनी फोटो की ओर संकेत करते हुए वह कहने लगा—यदि यह फोटो···!

क्या?

नदी-तट पर चार ब्राह्मणों द्वारा इसे जलवा सको···?

जैसे बिजली गिरने पर या सांप के काटने पर व्यक्ति का चेहरा सूखकर नीला पड़ जाता है, ठीक उसी प्रकार ही शान्ति की भी दशा हुई। काफी देर बाद धीरे-धीरे उसके मुख तथा आंखों में खून का प्रवाह जारी हुआ। अत्यधिक करुणा-पूरित नयनों से अपने पति की ओर निहारती हुई वह नीचे चली गयी। पुरोहितजी को बुलाकर उसने यथाविधि मंगल-कल्याण और शान्ति की व्यवस्था करने को कहा। राजस्व के अर्घ-भाग की मनौतियां मान उसने मन-ही-मन प्रतिज्ञा की कि यह बड़ी दीदी कोई भी क्यों न हों, वह अब कभी भी उनकी चर्चा न करेगी।

तत्पश्चाप काफी देर तक द्वार वन्द किये वह रोती रही। इससे पहले कभी भी उसने इतनी कठोर बात न सुनी थी।

ऊपर सुरेन्द्रनाथ पहले तो काफी देर तक मौन वैठे रहे और फिर उठकर बाहर चल दिये। दफ्तर पहुंच मथुरा बाबू के सामने आते ही

उन्होंने प्रश्न किया—

गोला गांव में किसी की जायदाद नीलाम की गयी है ?

दिवंगत रामतनु की विधवा पुत्र-वधू की।

क्यों ?

विगत दस सालों का लगान बाकी था।

खाता देखूं तो ! कहां है ?

एकाएक मथुरानाथ अप्रतिभ-से रह गये और फिर कहने लगे—खाता तो पबना से अभी तक लाया नहीं जा सका।

ठीक है। खाता-बही लाने के लिए तुरन्त आदमी भेजो। बेचारी के रह सकने के लिए भी स्थान नहीं छोड़ा ! कहां रहेगी फिर वह ?

साहस करके मथुरा बाबू ने उत्तर दिया—अब तक जहां रहती थी, वहीं रहेगी।

कहां रहती थी इतने दिनों से ?

अपने पितृ-गृह कलकत्ता में।

पिता का नाम मालूम है ?

हां, मालूम है—ब्रजलाल लाहिड़ी।

और विधवा का नाम ?

माधवी देवी।

नतमस्तक हो सुरेन्द्रनाथ उन्हीं कदमों पर बैठे रहे। यह रंग-ढंग निहार तनिक घबराहट के साथ मथुरा बाबू ने प्रश्न किया—हुआ क्या ?

इस प्रश्न का कुछ भी उत्तर न दे सुरेन्द्रनाथ ने एक नौकर बुलाकर एक चुस्त घोड़े पर जीन कसने का आदेश दिया। बोले—मैं इसी क्षण गोला गांव जाऊंगा। जानते हो, गोला गांव यहां से कितनी दूर है ?

लगभग दस कोस। नौ बजे हैं अभी। एक बजते-बजते पहुंच जायेंगे।

जब घोड़ा आ गया तो उस पर सवार होकर सुरेन्द्रनाथ ने पूछा—किस ओर ?

उत्तर की ओर जाकर फिर पश्चिम की ओर मुड़ना पड़ेगा।

और तब चाबुक का आघात सह घोड़ा हवा हो गया।

जब शान्ति को समाचार मिला तो ठाकुरघर में अपना सिर पटक-

पटककर उसने फोड़ लिया और बोली—क्या यही तुम्हारी इच्छा थी, ठाकुरजी ? क्या फिर उन्हें पा सकूंगी ?

और तब दो प्यादे भी घोड़ों पर सवार होकर तत्काल ही गोला गांव की ओर दौड़ चले। उन्हें खिड़की से जाते निहार शान्ति अपने आंसुओं को पोंछने लगी। वह बोली—मां दुर्गे ! बस, उन्हें लौटा दो एक बार ! एक जोड़ी भैंसे भेंट करूंगी, जो कहो अर्पित कर दूंगी। जब तक तुम्हारी प्यास न बुझे, जितना चाहो दूंगी।

अभी गोला गांव पहुंच सकने में दो कोस शेष हैं। घोड़े के खुर तक फेनाविल हो उठी हैं। धूल उड़ाता, खेतों के मेंड़ तोड़ता घोड़ा उड़ा जा रहा है। ऊपर प्रचंड सूर्य तप रहा है।

उसी घुड़सवार अवस्था में ही सुरेन्द्रनाथ का जी मिचलाने लगा। लगा, जैसे प्रत्येक अन्तड़ी कटकर बाहर आ गिरेगी। दो-चार खून की बूंदें भी खांसी के साथ टपक कुर्ते पर आ गिरीं। उसने हाथों से मुख पोंछ लिया और एक बजने से पूर्व ही वे गोला गांव जा पहुंचे। राह पर ही एक दुकानदार से प्रश्न किया—गोला गांव यही है ?

हां।

रामतनु सान्याल का कौन-सा मकान है ?

इस ओर है।

घोड़ा पुनः भागा और उस मकान के सामने जा खड़ा हुआ।

द्वार पर एक प्यादा तैनात था। मालिक को निहार उसने नमस्कार किया।

घर पर कौन है ?

कोई भी नहीं।

कोई नहीं ? गये कहां ?

नाव करके सुबह ही चल दिये।

किधर ? किस राह से ?

दक्षिण की ओर। नदी के किनारे राह है।

घोड़ा जा सकेगा ?

ठीक नहीं कह सकता। रास्ता नहीं शायद !

और फिर घोड़ा तेजी से दौड़ने लगा। दो कोस जाने के बाद आगे राह न थी। घोड़ा तो जा नहीं सकता था, सो उसे छोड़कर सुरेन्द्रनाथ पैदल ही चलने लगे।

चलते-चलते उन्होंने देखा कि कुर्ते पर अनेक स्थानों पर खून के कतरे गिरकर धूल से धूसरित हो जम गये हैं। उनके अधरों पर उस समय भी रक्त छिटक रहा था। नदी-तट से एक घूंट पानी पीकर फिर प्राणपण से चलना आरम्भ कर दिया।

नंगे पांव, सारा शरीर कीचड़ से सन रहा है और बीच में छिटके रक्त के धब्बे, जैसे किसी ने छाती पर खून की बौछार कर दी हो।

दिवस ढलने लगा। पैर अब और आगे नहीं बढ़ना चाहते। लगता है, जैसे यदि अबकी बार पांव लम्बे हो गये तो फिर कभी भी उठने न पायेंगे। तभी तो जैसे जीवन का परिसमाप्त विश्राम पाने के लिए पांव अपने अन्तिम विश्राम पर पहुंच सकने के लिए निरन्तर आगे बढ़ रहे हैं। जितने भी प्राण अवशिष्ट हैं, बाकी जितनी भी शेष शक्ति है, वह समस्त खर्च करके अन्तिम विश्राम-स्थली को अवश्य ही पा लेना चाहते हैं—फिर कभी भी न उठ सकने के लिए।

नदी के उस मोड़ पर एक नाव करेमूं के झुरमुट को हटाती हुई अपनी राह बना रही है। सुरेन्द्रनाथ ने चिल्लाकर कहा—बड़ी दीदी !

किन्तु शुष्क कंठ से शब्द के स्थान पर दो बूंद रक्त टपककर रह गया।

बड़ी दीदी !—और फिर दो रक्त की बूंदें टपक पड़ीं।

बड़ी दीदी !—पुनः रक्त की दो निर्मम बूंदें !

उस करेमूं के झुरमुट ने नाव की गति को अवरुद्ध कर दिया है। पास पहुंच रहे हैं सुरेन्द्रनाथ ! फिर पुकारा उन्होंने—बड़ी दीदी !

सारे दिन के उपवास तथा अन्तर्वेदना से आहत माधवी निष्प्राण-सी पलकें मूंदे सन्तोषकुमार के पास लेट रही थी। उसके कानों ने सहसा ही पुकार सुनी। लगा कि कोई चिर-परिचित स्वर पुकार रहा है। वह झट उठकर बैठ गयी। उसने मुंह बाहर निकालकर झांका। कीचड़ तथा धूल से लिपटे—अरे ! मास्टर साहब हैं क्या ?

नयनतारा की मां ! नाव किनारे लगाने के लिए जल्दी ही नाविक

से कहो।

उस समय सुरेन्द्रनाथ धीरे-धीरे नदी-तट पर गिर रहा था। सभी ने मिलकर उसे उठाकर किसी प्रकार नाव में पहुंचाया। उसे लिटाकर मुख तथा आंखों पर पानी का छिड़काव किया। सहसा पहचानते हुए एक नाविक बोल उठा—लालता गांव के जमींदार !

अपने इष्टदेव के कवच सहित कंठहार गले से उताकर माधवी ने नाविक के हाथ में देते हुए कहा—आज रात होने तक लालता गांव पहुंचा सकोगे ? सभी को ऐसा ही एक-एक हार दूंगी।

स्वर्ण-हार निहार तीन नाविक कन्धों पर रस्सियां तानकर नीचे उतर आये।

जब सांझ ढल गयी, तब कहीं सुरेन्द्रनाथ के औसान लौटे। नयन उघाड़ वह माधवी के मुख की ओर निहारने लगा। तब माधवी ने घूंघट नहीं काढ़ रखा था। माथे का कुछ भाग आंचल से अवश्य ढक रखा था। सुरेन्द्रनाथ का सिर गोद में रखा हुआ था।

कई क्षण निहारते रहने के बाद सुरेन्द्रनाथ ने प्रश्न किया—

बड़ी दीदी हो न तुम ?

अत्यन्त यत्न से पहले तो माधवी ने सुरेन्द्रनाथ के होंठों पर जम आये खून को पोंछा और फिर अपनी आंखें भी पोंछ डालीं।

बड़ी बहिन हो न तुम ?

मैं माधवी हूं।

पलकें मूंदते हुए सुरेन्द्रनाथ ने कहा—हां, वही।

लगा, जैसे समस्त विश्व का सुख इसी कवक्रोड़ में अनन्त था। क्योंकि बहुत दिनों बाद सुरेन्द्र इस सुख की खोज कर पाया है, सो उसके अधर-कोरकों पर एक सरल मुस्कान की रेखा खिंच गयी।

बड़ी दीदी ! बहुत दर्द है।

कल-छल-कल-छल करती नाव भागी जा रही थी। नाव की छत के अन्दर सुरेन्द्र के मुख पर चन्द्रमा की स्निग्ध किरणें पड़ रही हैं। नयनतारा की मां एक टूटा पंखा लेकर झल रही है।

धीरे-धीरे पूछा सुरेन्द्रनाथ ने—जा कहां रही थीं ?

अवरुद्ध कंठ से माधवी बोली—प्रमिला की ससुराल।

छिः बड़ी दीदी ! क्या समधी के घर इस प्रकार जाया जाता है ?

## दस

बड़ी दीदी की गोद में सिर रखे अपने ही मकान में सुरेन्द्रनाथ अन्तिम शैया पर लेटे हैं। शान्ति उनके युगल-चरणों को गोद में रखे अश्रुसिक्त कर रही है। पबना के समस्त वैद्यों तथा डॉक्टरों के समस्त प्रयासों से खून बन्द नहीं हो पा रहा। पांच वर्ष पहले जो चोट लगी थी; आज उसके कारण खून की उल्टियां हो रही हैं।

माधवी के हृदय के अन्दर की बात खोलकर न कह सकेंगे। हम स्वयं भी अच्छी तरह नहीं जानते। जान पड़ता है उसे पांच बरस पहले की बात याद आ रही है। उसने उसे घर से निकाल दिया था और लौटा नहीं सकी थी। लेकिन अब पांच बरस बाद सुरेन्द्रनाथ लौट के आया है।

सन्ध्या के उपरान्त उज्ज्वल दीपालोक में सुरेन्द्रनाथ ने माधवी के मुख की ओर देखा। पैरों के पास शान्ति बैठी हुई थी, वह सुन न सके, इसलिए अपने हाथ से माधवी का मुख अपने मुख के पास खींचकर धीरे से कहा—बड़ी बहन, उस दिन की बात याद है जिस दिन तुमने मुझे निकाल दिया था ? मैंने इसलिए अब तुमसे बदला लिया है। तुम्हें भी निकाल दिया। क्यों, बदला चुक गया न ?

क्षण-भर में ही माधवी ने होश-हवास गंवाकर अपना लटका हुआ मस्तक सुरेन्द्र के कन्धे के पास रख दिया। इसके बाद जब उसे होश हुआ तब सारे घर में रोना-पीटना मचा हुआ था।

Acc. No. 77893
12/3/92

□□

Library IIAS, Shimla
H 891.443 C 392 B
00077895